प्रथम हिन्दी संस्करण १९५७

मुद्रक
अशोक प्रेस, लखनऊ

अनुवादिका की ओर से

मराठा इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक श्री गोविन्द सखाराम सारदेसाई का "Main Currents Of Maratha History" का यह हिन्दी रूपान्तर पाठकोंके कर-कमलोंमें भेंट करते हुए मुझे अपार हर्षका अनुभव हो रहा है। जैसा लेखकने स्वयं स्वीकार किया है—यह छोटी-सी पुस्तक मराठोंके पूरे इतिहासका ब्योरा नहीं देती, इसमें उस वृहत् विषयके प्रमुख अंगोंकी तर्कपूर्ण व्याख्या दी गई है और पेशवा बाजी राव प्रथम माधव राव, महादाजी सिन्धिया तथा नाना फड़नीस जैसे प्रमुख व्यक्तियोंकी नीति, उद्देश्य एवं सफल कृतियोंका वर्णन किया गया है। यही नहीं, विदेशी इतिहासकारों तथा लेखकोंने मराठोंको लुटेरा, अत्याचारी और कलह-पटु दिखा कर जो मिथ्या-धारणाएं पैदा कर दी हैं, उन्हें इस पुस्तकमें तर्कपूर्ण तथ्यों द्वारा दूर करनेकी चेष्टा की गई है। भारतीय स्वतंत्रता की इस शैशवावस्था में यह जान लेना परम आवश्यक है कि लाख कठिनाइयां होते हुए भी हमारे देश-वासी मराठोंने अपने अद्वितीय साहस, प्रतिभा, पराक्रम, धर्मपरायणता एवं देशप्रेमसे किस प्रकार एक अखिल-भारतीय हिन्दू-राज्य की आधार-शिला रख दी थी और मुगलों जैसी बड़ी ताक़तके छक्के छुड़ा दिये थे।

देसाईजी ने मराठीके मौलिक स्रोतोंकी सहायता से अपने तर्कोंकी पुष्टि की है और यह दिखा दिया है कि मराठे एक 'जीवित राष्ट्र' थे। इस प्रकार मराठी न जाननेवालोंके लिए उन्होंने विषयको ग्राह्य बना दिया है। पर विदेशी लिबासमें होने के कारण उनकी पुस्तक सर्वसाधारण की पहुंचसे बाहर है, अतएव उसका हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत करके इस कमी की पूर्ति कर दी गई है। सरल भाषा एवं मनोरम शैली द्वारा अनुवादिका तथा प्रकाशकने पुस्तकको सर्वोपयोगी बनानेका भरसक प्रयास किया है। *पाठकोंसे निवेदन है कि यदि इसमें किसी प्रकार की त्रुटियां रह गई हों* तो अपने सुझाव देकर हमें कृतार्थ करें।

तिथि १-५-५७

रामेश्वरी देवी श्रीवास्तव
अनुवादिका

प्राक्कथन

(१९४६)

इस पुस्तकका जन्म विश्वविद्यालयके अध्यापकके रूपमें दिये गये मेरे उन व्याख्यानों (Readership lectures) से हुआ जो मैंने १९२६ ई० में पटना-विश्वविद्यालयमें दिये थे। इसका प्रस्तुत तृतीय संस्करण तैयार करनेमें मैंने प्राणपणसे इस बातकी चेष्टा की है कि विषय-प्रवेश, अनुसन्धान कार्यमें हालमें होने वाली उन्नति तथा नवीन सामग्रियोंके प्रकाशनके साथ-साथ हो। जो लोग मराठी भाषा से अनभिज्ञ होनेके कारण उस भाषा में प्राप्य सामग्रीका अध्ययन नहीं कर सकते, उनके सम्मुख मराठा इतिहासकी प्रमुख विशेषताओंकी व्याख्या करना मेरा मुख्य उद्देश्य रहा है जिसका मैंने सदैव ध्यान रखा है। इन व्याख्यानोंमें छोटी-छोटी बातोंको छोड़कर मराठा इतिहासके प्रधान पात्रों एवं घटनाओंकी धारावाहिक आलोचना दी गई है। उनके विषयमें पाठक-गण मेरी "मराठोंका नवीन इतिहास" नामक पुस्तक को, जो हाल ही में तीन भागोंमें प्रकाशित हो चुकी है, सुविधापूर्वक पढ़ सकते हैं। प्राचीन मराठा-कालमें घटित होनेवाली घटनाओंके क्रमश: पक्षपातरहित विवरण प्रस्तुत करना ही मेरा उद्देश्य रहा है।

पुस्तकका प्रस्तुत संस्करण मैंने १९४६ में पूरा किया था। परन्तु उस समय से १५ अगस्त, १९४७ की शांतिमय क्रान्ति एवं तदुपरान्त होनेवाले असंख्य राज्योंके विलीनीकरणके कारण भारतका नक्शा पूरी तौर पर बदल चुका है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए, अपनी पुस्तकके अन्तिम पृष्ठोंमें व्यक्त किये जानेवाले मेरे अनेक विचार निश्चय ही समयसे पीछे जान पड़ेंगे, पर हालमें राजनैतिक जीवनमें होनेवाले परिवर्तनोंके अनुरूप बनानेके लिए उन पृष्ठोंको फिर से लिखनेकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता।

मेरी आयु मुझे इस बात पर विश्वास करनेके लिए बाध्य करती है कि यह संस्करण मेरे जीवन कालका अन्तिम संस्करण होगा। अतः मैं अपने पाठकोंको, जिन्होंने मेरे ऐतिहासिक प्रयासोंका सदैव स्वागत किया है, धन्यवाद देते हुए उनसे विदा लेता हूँ।

अन्तम, मैं सर यदुनाथ सरकारके प्रति, जो आजीवन मेरे मित्र रहे हैं और जिनके साथ मैंने इतिहासमें काम किया है, अध्ययन पर्यन्त प्राप्त होनेवाली उनकी मूल्यवान् सहायता के लिए अत्यधिक ऋणी हूँ—इस बातको स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता।

जी० एस० सारदेसाई

कमशेत,
जिला पूना,
१ सितम्बर, १९४९

प्राक्कथन

(१९३३)

सात वर्ष पूर्व जब इन व्याख्यानोंका प्रथम संस्करण छपा था, उस समयसे अब तक मराठा-इतिहासके अनुसन्धानमें अत्यधिक उन्नति हो चुकी है, जिसके लिए «पेशवाओंके दफ़्तर» में से छाटे हुए अनेक विवरण, जो बम्बई की सरकार द्वारा प्रकाशित किये गये हैं, विशेष रूपसे उत्तरदायी हैं। इन संकलनका सम्पादन करते समय मुझे अपने स्टाफकी सहायता से ढेरके ढेर पुराने क़ाग़ज-पत्रोंकी छान-बीन करनी पड़ी। ये काग़ज़ात ऐतिहासिक भी हैं और प्रकाशन-सम्बन्धी भी, और उनसे स्वभावतः मुझे ऐसे बहुतसे लाभदायक विषयोंकी जानकारी प्राप्त हो गई है, जो मेरे विचारसे वास्तवमें, उन काग़ज़ोंकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् हैं जो वस्तुतः प्रकाशित हो चुके हैं। मैं नहीं चाहता कि यह अनुभव मेरे साथ ही नष्ट हो जाय—इसी कारण मैं उसका लेखा तैयार करनेके लिए प्राण-पणसे चेष्टा कर रहा हूं। इस बीचमें मेरे पटना के व्याख्यानोंकी प्रतियोंकी माग बहुत बढ़ गई है, और अब मैं «पेशवाओंके दफ़्तर» के ऊपर अपने आरम्भ किये हुए कार्यसे छुट्टी पाते ही उसको पूरा करनेकी चेष्टा कर रहा हूं। नये संस्करणके लिए इन व्याख्यानोंको दुहराते समय बहुत-सी नई-नई बातें मेरे मनमें आईं जिनको जगह देनेके लिए मैंने चेष्टा की है; पर ऐसा करनेमें भौतिक रूपसे मौलिक योजना अथवा पुस्तकके आकारमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। इन व्याख्यानोंका मुख्य उद्देश्य—जो लोग मराठी भाषा से अपरिचित होनेके कारण मौलिक सामग्रियोंका अध्ययन उनके मूल रूपमें नहीं कर सकते, उनके सम्मुख शुद्ध मराठा दृष्टिकोणसे मराठा इतिहासकी व्याख्या करना था। इस उद्देश्यको मैंने अभी तक सावधानीके साथ पूरा किया है। पर जैसा स्पष्ट है—प्रथम प्रयासमें बहुत-सी बातें छूट गई थीं। उसमें शिवाजीके उत्थान और जीवनवृत्ति की अथवा पेशवा बाजीराव प्रथम और उसके भाई की महान् सफलताओंकी कोई चर्चा न थी। शाहू की मृत्युके बाद अचानक अंग्रेजोंके साथ होने वाले मराठा युद्धका वर्णन कर दिया गया था, इस तरहसे पानीपतकी महत्वपूर्ण घटना या माधवराव प्रथम की देदीप्यमान जीवन-वृत्ति पूरी पूरी छूट गई थी।

इन विषयोंको अब मैंने शामिल कर लिया है और महादाजी सिन्धिया एवं नाना फड़नीस की कृतियों और चरित्रकी, तथा मराठोंके पतनके कारणोंकी जिनका वर्णन अन्तिम अध्यायमें है, विवेचना करनेमें मैंने प्रासंगिक परिवर्तन कर दिये हैं।

मेरे पाठक-गण इस बातको ध्यानमें रखेंगे कि मैंने यहां पर किसी तरहसे भी मराठोंका पूरा इतिहास लिखनेकी चेष्टा नहीं की है। मेरा अभिप्राय एक धारावाहिक रचनात्मक आलोचना प्रस्तुत करना और उस बृहत् विषयके प्रमुख अंगोंकी तर्क-पूर्ण व्याख्या करना है। ऐसा करनेमें मैंने बहुत कुछ उस शैलीका अनुसरण किया है जिसका प्रयोग सर अल्फ्रेड लायल ने अपनी जगमगाती हुई रचना, « दि ब्रिटिश डोमिनियन इन इंडिया (The British Dominion In India)» में किया है, यद्यपि मैं अपनेमें उनकी जैसी आलोचनात्मक शक्तियों अथवा सच्चे निर्णयके होनेका दावा नहीं करता। जान-बूझ कर छोटी-छोटी बातोंको छोड़कर और इस तरहसे विषय-वर्णनको बोझीला बनानेसे बचा कर, मैंने मराठा शक्तिके उद्देश्यों और लक्ष्यों, अच्छाइयों और बुराइयों, अभिप्रायों तथा सामान्य प्रकृतिकी व्याख्या करनेकी चेष्टा की है। ऐसा करनेमें, व्यक्तिगत अध्ययन और अनुभवसे मुझे जो कुछ आवश्यक जान पड़ा उसे जोड़ता गया हूँ, संशोधन करता गया हूँ और पढ़ते समय जो भी मिथ्या धारणाएं और ग़लत विचार मेरे ध्यानमें आये उन सबको दूर करता गया हूँ। इस बातका निर्णय तो पाठक-गण ही कर सकते हैं कि मैं अपनी इस योजना में, जो एक तरहसे महत्वाकांक्षी कही जा सकती है, कहां तक सफल हुआ हूँ। मैं सिर्फ इस बातका दावा कर सकता हूँ कि यहां पर व्यक्त किये गये विचार पूर्णतया मेरे अपने हैं, जैसा कि ऐतिहासिक विषयोंके किसी भी वर्णनके साथ होना लाज़मी है। इस तरहका कार्य आरम्भ करनेमें अलग-अलग विचार धाराओंके लोगोंको सन्तुष्ट करनेकी बात सोचना हास्यास्पद है। पर मैं जानता हूँ कि मैंने पक्षपातको बचाने और मराठा काल का एक पक्षपात रहित वर्णन करनेकी चेष्टा की है। यदि इतिहासकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता होती है, तो मेरे विचारसे, पक्षपातरहित एवं निर्भीक आलोचना, सबसे अधिक आवश्यक है, और इस सिलसिलेमें, मैं समझता हूँ कि मैंने जहां तक भारतीय इतिहासके मराठा युगका सम्बन्ध है, सारे विद्यार्थियोंकी शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करनेकी चेष्टा की है।

प्रथम संस्करणमें मैंने जो कुछ लिखा था उसे मैं नम्रतापूर्वक दुहराता हूँ—मेरा तात्पर्य है कि "मैं पटना विश्वविद्यालयके प्रति इस बातके लिए अत्यधिक आभारी हूँ

कि उसने कलकत्तेमें व्याख्यानोंका मुद्रण, मेरे व्यक्तिगत निरीक्षणमें शीघ्रता के साथ करानेका भार अपने ऊपर लिया। मैं अपने परम मित्र प्रो० सरकार को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने कृपा करके इस काममें तत्परता के साथ मेरी हर तरहसे सहायता की और इस प्रकार यह दिखा दिया कि मराठा इतिहासमें वे कितनी अधिक रुचि रखते हैं।"

कमशेत,
जिला पूना,
१ दिसम्बर, १६३३

जी० एस० सरदेसाई

३. हिन्दू-समाज के सम्बन्ध में शिवाजी की धारणा

४. शाहू और मराठों का विस्तार

५. मुसलमानों तथा मराठों के बीच होनेवाले संघर्ष का विकास

६. महादाजी सिन्धिया और नाना फड़नीस (फड़नवीस)

७. मराठा-राज्य का पतन

१

महाराष्ट्र-धर्म : मराठों का आदर्श

१. मुसलमानों का प्रभाव दक्षिणमें प्रवेश न कर सका.

महाराष्ट्रके अनेक बड़े-बड़े विद्वानोंने अपने अनुसन्धान कार्यमें जिस एक विषयके ऊपर अपना ध्यान केन्द्रित किया है, वह ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे अत्यन्त महत्वपूर्ण है और मराठोंके मुख्य उद्देश्यकी ओर संकेत करता है। वह विषय है—उनकी स्वराज्य-सम्बन्धी धारणा (Conception) और उसके लिए प्रयत्न करनेमें उनका उद्देश्य। उनकी उस धारणा के अन्तर्गत ऐसे अनेक सिद्धान्त निहित थे जिनके ऊपर वे आरूढ़ रहते थे। यही (धारणा) वह मुख्य शक्ति थी जिसने उन्हें एकता के सूत्रमें बाँध रखा था, और जो न केवल कठिनाइयों और मुसीबतोंके जमानेमें उन्हें प्रोत्साहित करती रही, वरन् लगभग दो सौ वर्षों तक राष्ट्रीय उत्थानके लिए काम करनेमें उन्हें समर्थ बनाये रही। यह तो स्पष्ट ही है कि विषय बहुत बड़ा और जटिल है। उसके ऊपर अपार साहित्य और परम्पराएं मिलती हैं और लगातार एकके बाद एक मराठोंके अनेक साधुओं, उपदेशकों तथा नेताओंका उसके साथ सम्बन्ध है। पुरानी रचनाओं और रिकार्डों, तथा हालके तमाम विद्वानों द्वारा, जिन्होंने इस विषय पर विचार किया और लिखा है, उत्पादित अपार साहित्यकी सहायता से उसकी परीक्षा करना बड़ा शिक्षाप्रद (instructive) होगा। अतः साधारण रूपसे मराठा-इतिहासकी

भूमिको साफ़ करने तथा आपके सम्मुख, इस मूल विषय पर महाराष्ट्रमें होनेवाले अध्ययन तथा अनुसन्धानके कुछ महत्वपूर्ण परिणामों और कुछ तथ्यों (facts) और विचारोंको प्रस्तुत करनेके लिए, अपने कार्यके आरम्भमें ही विवेचना के लिए उसको लेना मैं अपना धर्म समझता हूँ। वह प्रकांड पंडित तथा विचारक श्री एम० जी० रानाडे थे, जिन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मराठा शक्तिका उत्थान' में पहली बार दक्षिण में होनेवाली राष्ट्रनिर्माणकी क्रिया का वर्णन किया है तथा 'महाराष्ट्र-धर्म' अथवा महाराष्ट्रके कर्तव्यको उसका मार्गदर्शक सिद्धान्त निर्धारित किया है। इस वाक्यांशके मौलिक तथा पूर्ण अर्थको जाननेके लिए सूक्ष्म परीक्षणकी आवश्यकता है ताकि हम उस विचार-क्रम (clue) को प्राप्त कर सकें जिसके द्वारा हम यह समझ सकते हैं कि भारतकी समस्त जातियोंमें से केवल मराठे ही क्यों काफी लम्बे अरसे तक एक स्वतंत्र शक्तिकी स्थापना कर सकनेमें समर्थ हो सके।

जिस अर्थमें उत्तरी भारत मुसलमानोंके अधीन था, उस अर्थमें नर्मदा के दक्षिणका भारत पूर्णरूपसे कभी मुसलमानोंके अधीन नहीं हुआ था। जयपाल और पृथ्वीराज के समयसे लेकर राना सांगा के समय तक उत्तरी भारतके हिन्दू राजा मुसलमान विजेताओंसे देशको मुक्त करनेके लिए कठोर, परन्तु व्यर्थ का संघर्ष करते आये थे। राजपूत राजा पूर्णरूपसे कुचल दिये गये, वे सम्राटोंके अनुचर बन गये; उन्होंने उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, और धर्म तथा अनुशासनके सभी मामलोंमें उनकी (सम्राटोंकी) अधीनता स्वीकार कर ली। हिन्दुओंके पवित्र स्थान भ्रष्ट कर दिये गये, उनके मंदिर तोड़ डाले गये, उनकी धार्मिक रीतियोंमें हस्तक्षेप किया गया; दूसरे स्थानोंमें पूरीकी पूरी आबादियोंको मुसलमान बना लिया गया। हिन्दू मन्दिरों, मूर्तियों, राजप्रासादों तथा संस्कृतिके प्राचीन उत्कीर्ण लेखों, और सच तो यह है कि उन सभी चीजोंको, जो प्रत्येक राष्ट्रकी पवित्र एवं प्रेरक निधि होती हैं, कितनी अधिक हानि पहुंची है, इस बातको समझनेके लिए उत्तरी भारतके किसी भी महत्वपूर्ण नगर को, जैसे धार और मंडूगढ़ (Dhar and Mandugad), देख लेना काफी है। माहिकवती (Mahikavati)—(बम्बई के निकट महिम नामक एक स्थान) के एक प्राचीन 'बखर' (इतिहास) की खोज हुई है और वह छापी जा चुकी है। इस पुस्तकको भगवान् नन्ददत्त नामक एक लेखकने १४७८ ई० में समाप्त किया। पर उसके बहुतसे हिस्से उस तिथिसे कई शताब्दी पूर्व लिखे जा चुके थे। इसमें, १३४८ ई० में मुसलमानोंके हाथमें आ जानेके पश्चात् उत्तरी कोंकणकी दशा कितनी

अधिक बिगड़ गयी थी, इसका निम्नलिखित वर्णन दिया हुआ है। लेखक कहता है: "धर्मका पूर्णरूपसे नाश कर दिया गया था; मित्रता तथा जातिभावके बन्धन लुप्त हो गये थे, क्षत्रियगण देशकेप्रति अपनी समस्त कर्तव्य-बुद्धिको खो चुके थे। हथियारोंको त्याग कर उन्होंने कृषिको गले लगाया था। कुछने केवल बावूगीरीका पेशा अपना लिया और बाकी लोग दासों तथा शूद्रोंकी हीन स्थितिको प्राप्त हुए। दूसरी ओर अर्हन्त लोग यमपुरीके लिए रवाना कर दिये गये। अधिकांश लोगोंने आत्म-सम्मान खो दिया और महाराष्ट्र धर्म पूर्णतया नष्ट कर दिया गया।" परन्तु, जब एक ओर उत्तरमें हिन्दुओंने असहाय दशा में हिंसा तथा शक्तिके सम्मुख सिर झुका दिया था तो दूसरी ओर, दक्षिणमें, जहां अलाउद्दीन खिलजी तथा मलिक काफूर के आक्रमण केवल क्षणिक प्रभाव डाल सके थे, मुसलमान विजेताओंके आगे बढ़ते हुए कदमोंको एक जबर्दस्त ठेस लगी। मुहम्मद तुगलक जैसा क्रूर सुल्तान दक्षिणको जीत कर दिल्ली-सल्तनतमें शामिल न कर सका, और विद्रोही हसन बहमनी ने यद्यपि गुलबर्गा में एक स्वतंत्र राजवंशकी स्थापना की थी तथापि समस्त व्यावहारिक उद्देश्योंके लिए वह राज्य एक हिन्दू राज्य था, जिसके शासनमें मुस्लिम तत्वका मिश्रण केवल नामके लिए था।

शिवाजीके जन्मसे पूर्वके दो सौ वर्षों तक दक्षिणमें ऐसी शक्तियां काम करती रहीं जिनके कारण छोटे, बड़े और कम-ज्यादा असर वाले अनेक केन्द्रोंमें हिन्दुओंकी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना सरल हो गया था। शिवाजीने तो केवल बिखरी हुई इकाइयोंको एकता के सूत्रमें बांध दिया, और चतुराईके साथ उस धार्मिक भावना का प्रयोग किया, जिसका लोकप्रिय कल्पना के ऊपर जबर्दस्त असर था। राजवाड़े (Rajwade) ने महाराष्ट्रकी इस प्रवृत्ति तथा भारतके अन्य सूबोंकी प्रवृत्तिके बीच जो अन्तर बताया है, वह ठीक ही है। वह पहली प्रवृत्तिको «जयिष्णु» (jayishnu) अथवा «विजय करना» और बादवालीको «सहिष्णु» अथवा "निष्क्रिय होकर कष्ट सहन करना" कहते हैं। महाराष्ट्रकी यह अपूर्व बुद्धि अथवा प्रवृत्ति, निश्चित रूपसे उसके संतों एवं उपदेशकोंकी वाणीमें तथा उसके योद्धाओं एवं कूटनीतिज्ञोंके कार्य-कलापोंमें भरी पड़ी है। यद्यपि मराठा संत बहुत पहलेसे महाराष्ट्रधर्मके ऊपर उपदेश दे चुके थे और उसके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट कर चुके थे तथापि ऐसा समझा जाता है कि «महाराष्ट्र-धर्म» की उक्ति (expression) का प्रयोग सर्वप्रथम एक लोकप्रिय मराठी पुस्तक, «गुरु-चरित» अथवा "महागुरु दत्तात्रेयकी जीवनी",

आचरण किया वह भगवान्‌को भी अच्छा न लगा।" शाहजी १६३७-३९ में बीजापुरी सेनानायक रणदौलाखां (Randaula Khan) के साथ पश्चिमी कर्नाटक जीतने के लिए गये। कन्थिरायनरासा-चरितम् (Kanthirayanarasa-charitam) के लेखक गोविद वैद्यने इस चढ़ाईके जमानेमें होनेवाले क्रूर अत्याचारोंका वर्णन इस प्रकार किया है: "रणदौलाखा और शाहजी ने इक्केरी (Ikkeri) के वीरभद्र नायकके ऊपर चढाई करदी और इक्केरी को घेर लिया। वे बन्दूकों, बमगोलों और ढेलवांसों (slings) से लैस थे। उन्होंने अपनी भीषण बन्दूकें किलेकी मुंडेरो पर रख दीं। तुर्कों ने किले पर अधिकार कर लिया, स्त्रियोंको पकड़ लिया, संगमरमरकी बनी हुई देव मूर्तियोंके सिर तोड़ डाले, मंदिरों और नगरको लूट लिया, सच्चरित्र स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया और गायोंको मार डाला। महलकी सारी वस्तुओं पर हर्षपूर्वक अधिकार कर लेनेके पश्चात्, रणदौलाखां ने नगररक्षक नियुक्त किये और वह स्वयं शीघ्र ही बादशाहके दरबारको लौट आया तथा लूटकी चीजें उसे भेंट कर दीं। यह है—शिवाजी के विद्रोहके विकासकी व्याख्या।

वह प्रसिद्ध पद जिसको शिवाजी ने अपनाया, और जिसको उसके बाद उसके उत्तराधिकारी लगातार अपनी राजकीय मुद्राओं पर उत्कीर्ण कराते रहे, उसी प्रवृत्ति का एक दूसरा पुष्ट प्रमाण है। वह पद इस प्रकार है: "प्रतिपदा के चन्द्रमा की कला की तरह दिन प्रतिदिन बढ़नेवाली; तथा विश्व-वंदित शाहजी के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा विश्व कल्याणके लिए शोभित हो रही है।"* स्वर्गीय श्री भावे, जो एक मर्मज्ञ विद्वान् थे, इस बातका प्रतिपादन करते थे कि इस पदका प्रयोग पहले जावली (Javli) के मोरिय लोगोंने (Moreys) अपनी मुद्रा पर किया था; शिवाजी ने उसमें अपनी ओरसे कुछ उचित परिवर्तन करके उसको अपना लिया।

३. महाराष्ट्र-धर्म अथवा मराठा प्रवृत्ति किस प्रकार अंत तक मराठों को उत्तेजना प्रदान करती रही.

- महाराष्ट्र-धर्म की इस वृत्तिने औरंगजेब के साथ होनेवाले दीर्घकालीन संघर्ष

* प्रतिपच्चंद्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववंदिता।
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

के जमानेमें कठोरतम परीक्षाओंके बीच जातिको केवल जीवित ही नहीं रखा, वरन् आगामी परिवर्तनों तथा बादको होनेवाले मराठा-साम्राज्यके विस्तारके समय उसका सचाईके साथ पालन भी किया गया। प्रथम चार पेशवाओंने इस बातके अनेक प्रमाण छोड़े हैं कि वे महाराष्ट्र-धर्म के इस आदर्शको सदैव अपनी आंखोंके सामने रखते थे। उत्तरमें वे जो भी कार्य करते थे उन सभीमें, तथा राजपूतों एवं अन्य जातियोंके साथ अपने व्यवहारमें साम्राज्य अथवा शक्तिके लिए वे निरन्तर उतना प्रयास नहीं करते थे जितना कि हिन्दुओंके प्रसिद्ध पवित्र स्थानोंको—जैसे प्रयाग, काशी, मथुरा, हरद्वार, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, गढ़मुक्तेश्वर आदि अन्य स्थानोंको मुसलमानोंके हाथसे मुक्त करानेके लिए। अन्तम प्रयाग और काशीको छोड़कर लगभग सभीके ऊपर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। ये दोनों स्थान तो हिन्दुओंके हाथमें फिर कभी न आ सके। एक स्मरणीय पत्रमें, जो शाहू ने अपने चचेरे भाई सम्भाजी के नाम उस समय लिखा था, जबकि सम्भा निजाम से जा मिला था, शाहू लिखता है: "यह राज्य देवताओं और ब्राह्मणोंका है। शंकर तथा देवी पार्वतीके आशीर्वादोंसे हमारे महान् तथा श्रद्धेय पूर्वज शिवाजी इसको मुसलमानोंके हाथसे बचानेमें समर्थ हो सके थे। ऐसी दशा में कितनी लज्जा की बात है कि तुमने महाराष्ट्र धर्मको त्याग दिया है और उसके शत्रुओंके यहां शरण ली है। रामदेव यादव से अपने कुलकी उत्पत्ति बताते समय हमारी छाती गर्वसे फूल उठती है, अतएव अपने कुलके विपरीत आचरण करना तुमको शोभा नहीं देता।"* शाहू का सर्वश्रेष्ठ पेशवा, बालाजी बाजीराव हिन्दुओंके लिए इस धार्मिक स्वतंत्रता की प्रवृत्ति से इतना अधिक ओतप्रोत था, कि वह १७५२ के एक पत्रमें निजाम के दरबारमें रहनेवाले अपने एक गुमाश्तेसे उसको (निजाम को) इस बातकी याद दिलानेके लिए कहता है कि "हम मराठा «गनीम लोग» (दुश्मन) महाराज शिवाजी महान्के शिष्य हैं।" इस तरह यह उसको (निजाम को) इस बातका संकेत करता है कि भारतके विभिन्न शासकोंके साथ अपने व्यवहारमें वे (मराठे) किस प्रकार धार्मिक उद्देश्यों द्वारा उत्तेजित होते थे, तथा वे किस प्रकार उस कार्यको पूरा करनेका प्रयास कर रहे थे जिसका आरम्भ शिवाजी के करकमलोंसे हुआ था।

अट्ठारहवीं शतीके अन्तिम दशक तक प्रसिद्ध मराठा कूटनीतिज्ञ गोविन्दराव काले,

* विडनिस द्वारा रचित शाहूकी जीवनी देखो पृष्ठ ५४-५६।

जो हैदराबादके दर्बारमें बहुत दिनों तक रह चुके थे, नाना फड़नीस को इस प्रकार लिखते हैं और दिल्लीमें सम्राट्के मामलोंकी व्यवस्था तथा मराठा-नीति के उद्देश्योंकी पूर्ति करनेके सम्बन्धमें महादजी सिन्धिया को प्राप्त होनेवाली महत्वपूर्ण सफलताओं के लिए मराठा सरकारको बधाई देते हैं। गोविन्दराव काले के पत्र तथा सन्देशे कई खंडोंमें छापे जा चुके हैं। उनसे यह विदित होता है कि वह बड़े योग्य और उच्च सिद्धान्तोंवाले व्यक्ति थे तथा तत्कालीन मराठा आदर्शोंसे पूर्णतया प्रभावित थे। आपको इस बातका ठीक-ठीक ज्ञान करानेके लिए कि उन दिनों मराठे क्या अनुभव करते थे और किस विषयके ऊपर बात किया करते थे, मैं यहां पर पूरा पत्र उद्धृत करूंगा: "यदि आपका वह अत्यन्त प्रेरक पत्र पढ़कर, जिसमें दिल्लीमें महादजी सिन्धिया द्वारा प्राप्त किये जानेवाले महान् गौरवका वर्णन दिया गया है, मैंने जो कुछ अनुभव किया उसको मैं पर्याप्त रूपसे व्यक्त कर सकता तो मुझे न जाने कितनी पुस्तकें लिखनी पड़ जातीं। तो भी मैं अपने उत्साहको नहीं दबा सकता, और साधारण सीमा को पार करनेका साहस करके अपने मस्तिष्कके कुछ एक मुख्य विचारोंको लिखकर प्रकट कर रहा हूं। हर एक मद (item) के लिए अलग-अलग बधाई देनेको जी चाहता है। भारत (उत्तरमें) सिन्धु नदीसे लेकर (दक्षिणमें) दक्षिणी महासागर तक फैला है; सिन्धु नदीके पार तुर्किस्तान आ जाता है; महाभारत-कालसे भारतकी ये सीमाएँ हिन्दुओंके नियंत्रणमें रही हैं। परन्तु बादके कतिपय हिन्दू राजाओंने अपना प्राचीन पौरुष खो दिया और यवनोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। फलस्वरूप वे (यवन) शक्तिशाली हो गये। चगताइयोंने (Chagtais) दिल्ली पर अधिकार जमा लिया; महान् सम्राट् आलमगीर के शासन-काल में उच्चतम बिन्दु आ पहुंचा। प्रत्येक जनेऊधारी हिन्दूसे ३ रु० ८ आ० जजिया के रूपमें वसूल किया जाने लगा: «पक्का» अथवा पका हुआ खाना दूकानोंमें बिकनेके लिए भेजा जाने लगा, और लोगोंको उसे खरीदनेके लिए बाध्य किया जाने लगा। इन अत्याचारोंके फलस्वरूप प्रतिक्रिया हुई। ऐसे समयमें हिन्दूधर्मकी रक्षा करनेके लिए देशके एक कोनेमें युगनिर्माता शिवाजी का उत्कर्ष हुआ। उसके बाद ही पेशवा बालाजीराव तथा भाऊसाहब जैसे तारागणका उदय हुआ जिन्होंने समस्त भारतको नवीन प्रकाश तथा आशा प्रदान की। इस प्रवृत्ति ने बादको महादजी सिन्धिया के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव डाला कि वह अपने पूर्वजों की आकांक्षाको पूर्ण करने में समर्थ हुआ। यदि हमारे यहां मुसलमानों भी

तरह «इतिहास» लेखक होते, तो वे महादजी की विजयों पर कई किताबें लिख डालते, क्योंकि वे राई को पर्वत बनानेकी कला में बड़े दक्ष हैं। हम हिन्दुओं का स्वभाव बिल्कुल इसका उल्टा है। हम असाधारण कामोंके बारेमें भी अपना मुह नहीं खोलते। सचमुच असम्भवको सम्भव कर दिखाया गया है। पटिल बोवा (महादजी) ने उन्हींका सिर तोड़ा जिन्होंने उसको (सिरको) उठानेकी चेष्टा की। सभी उनका अनभला चेतते थे, पर उन्होंने निर्भीकता के साथ अपने लक्ष्यको पूर्ण किया। निश्चय ही शिवाजी के आदर्श पर इस विजयका दूरगामी फल होगा। ईश्वर करे, इस कीर्तिमय परिणामको कोई अपनी कुदृष्टिसे कलंकित न कर सके। इस विजय से न केवल राज्यों तथा नये-नये प्रदेशोंकी प्राप्ति हुई हैं, वरन् वेदों और शास्त्रोंकी रक्षा हुई है, धर्म और हस्तक्षेपरहित उपासना की नींव पड़ी है, गाय और ब्राह्मण सुरक्षित हो गये हैं। वास्तवमें मराठोंको छोटे अर्धस्वतन्त्र राज्यों पर शासन करने की यह राजकीय शक्ति, यह कीर्ति तथा गौरव, सभी अब प्राप्त हो गये हैं तथा उच्चतम स्वरोंमें जगत्के सामने घोषित कर दिये गये हैं। इस ऐश्वर्य की रक्षा करना आप तथा पटिल-बोवा के लिए गौरवकी बात होगी। इस कार्य में आप किसी प्रकारकी शिथिलता न दिखायें। भारतके ऊपर हमारे प्रभुत्वके विषय में होनेवाले सारे संदेह दूर हो गये। अब लाहौर के मैदानोंमें मराठों की विशाल सेनाएं तैनात कर दी जानी चाहिए, क्योंकि वहां पर ऐसे असंख्य कुकर्मी हैं, जिनको हमारी विपत्तियोंमें आनन्द आता है और जो हमारा पतन कराने की चेष्टा करते रहते हैं।" बेचारे गोविन्दराव ने समुद्रके जरिये पश्चिमसे आनेवाले नये खतरेका अनुमान न कर पाया।

मैंने जान-बूझकर इस लम्बे पत्रको उद्धृत किया है जिसकी तिथि २ जुलाई, १७९२ अर्थात् अंग्रेजोंके हाथमें मराठोंकी राजकीय शक्तिके हस्तान्तरित होनेसे ठीक दस वर्ष पूर्व है। नाना फडनीस के कई एक पत्र मिले हैं जो उन्होंने महादजी सिन्धिया के नाम लिखे थे। उन पत्रोंमें नाना ने महादजी सिन्धिया को बार-बार जोर देते हुए लिखा था कि वह सम्राट् से कहकर हिन्दुओंके तीर्थस्थानोंको मुसलमानों के नियंत्रणसे मुक्त कराकर उन्हें (हिन्दुओं को) दिला दें तथा पूरे भारतवर्षमें गोवध का निषेध करानेके लिए सम्राट्से एक ऐसा स्पष्ट आदेशपत्र प्राप्त कर लें जो सब जगह प्रसारित कर दिया जाय। इस प्रकारका आदेश प्राप्त कर लिया गया था और बड़े समारोहके साथ वह पूना में घुमाया गया था। पर्याप्त मात्रा में न केवल इस बार

के स्पष्ट कर देने के पश्चात् कि उस समय भी जबकि उनका (मरहठों का) पतन निकट था, जैसा हम आज जानते हैं, मराठों के मस्तिष्कमें उच्च आदर्श किस प्रकार निरंतर लहरा रहे थे, वरन् उनकी आत्माएं भी कितनी ऊंची थीं, इस विषय पर मुझे कुछ और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

४. महाराष्ट्र-धर्म के अर्थ.

मैं यहां पर इस बातकी विवेचना नहीं कर रहा हूं कि महाराष्ट्र-धर्म का यह आदर्श कहां तक ठीक था और कहां तक गलत, और न ही इस बातकी कि आगे चलकर पूरे भारतको इससे लाभ हुआ अथवा हानि। इस बातकी विवेचना मैं आगे चलकर करूंगा। मैं सिर्फ इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि अनेक लेखकों ने, जातिके स्वभाव तथा कार्य और साथ ही उनके साहित्य एवं इतिहासके जरिये इस मराठा आदर्श को समझने तथा ढूंढ लेने की क्षमता के अभावके इतिहासको उसी प्रकार छोड़ दिया है जिस प्रकार प्राचीन ग्रीक सस्कृतिको, जो यूनानियों को उनके राष्ट्रीय प्रसारके लिए उत्तेजना प्रदान करनेवाली बतायी जाती है। रानाडे के समय से महाराष्ट्रके बड़े-बड़े पंडितोंने इस विषयकी विवेचना करनेके लिए अपनी शक्ति लगायी है, और समय-समय पर नये-नये प्रमाण देकर इस महान् लक्ष्यके अस्तित्वको, जिसके विषय में मैं यहां केवल एक रूपरेखा ही प्रस्तुत कर पाया हूं, सिद्ध किया है। महाराष्ट्र में प्राप्त सामग्रियोंका अध्ययन तथा उनकी विवेचना इतनी बार और इतनी गम्भीरता के साथ की गयी है कि मैं मराठा-इतिहास के ऊपर कहते समय इस सर्वव्यापी विषयको छोड़ न पाया। «राधा-माधवविलास चम्पू», «महिकावती बखर», «शिव-भारत», «पन्हाला-पर्वत-ग्रहण-आख्यान», «तालीकोट बखर», «दासबालिस», रामचन्द्र अमात्य की «राजनीति», शिवाजी तथा उनके पूर्वजोंके गुण और यशगान, पुराने भाटों और महात्माओंके गाने तथा मराठों और मराठों से पहलेके समयमें, मन्दिरों और ब्राह्मणोंको दिये जानेवाले दानोंके विषयमें उत्कीर्ण लेख और दस्तावेज—इन सभी की संख्या एवं महत्त्वमें दिन प्रति-दिन वृद्धि होती जा रही है। साथ ही हमको इस बातके प्रमाण मिलते जा रहे हैं कि लोगोंके मस्तिष्कमें महाराष्ट्र-धर्म की इस धार्मिक प्रवृत्तिका अस्तित्व बहुत काल तक रहा। दादूजी कवियों तथा साहित्यके संरक्षक थे। उनके उपजीवियोंमें से, जयराम और परमानन्द ने अनेक पुस्तकें लिखी

जिनकी खोज हाल ही में हुई है। ये पुस्तकें छप गयी हैं तथा इस योग्य हैं कि सावधानी के साथ उनका अध्ययन किया जाय।

राजवाड़े कहते हैं: "महाराष्ट्रमें जन्म लेने वाले महाराष्ट्र लोग—मराष्ट्र कहलाते हैं। उसको बिगाड़ कर मराठा शब्द बना है। जिस देशमें महाराष्ट्रिक निवास करते थे वह महाराष्ट्र कहलाने लगा। ब्राह्मणोंसे लेकर «अन्त्यज» (Antyajas) लोगों तकको सभी हिन्दू जातियां विस्तृत रूपमें मराष्ट्र अथवा मराठा नामसे पुकारी जाने लगीं। इन मराठोंका धर्म विस्तृत रूपमें महाराष्ट्र-धर्म के नामसे पुकारा जाने लगा। उसमें चार तत्व हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) देवताओंके प्रति व्यवहार और शास्त्रोंके मंत्र (देवशास्त्राचार), (२) स्थानीय व्यवहार (देशाचार), (३) परिवार-सम्बन्धी व्यवहार (कुलाचार) और (४) जाति-व्यवहार (जात्याचार)। महाराष्ट्रके निवासी इन सबका पालन करनेके लिए बाध्य थे।" जस्टिस रानाडे कहते हैं: "इस देशकी आम जनता को प्रेरित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में मजबूत शक्ति यदि कोई है तो वह है उनके धार्मिक विश्वास के प्रति अपील। पिछले ३०० वर्षोंमें पूरा भारतवर्ष मुसलमानोंके युद्ध-प्रधान धर्मके संपर्कमें आनेके कारण प्रत्यक्ष रूपसे गतिशील हो उठा था और सभी जगह, विशेष रूप से महाराष्ट्रमें, एक विशिष्ट प्रकारकी क्रिया और प्रतिक्रिया का चक्र चल पड़ा था।" मैं यहां पर इस समस्या की छोटी-छोटी बातोंमें नहीं पड़ सकता, क्योंकि उसके लिए धैर्यपूर्ण तथा मौलिक अध्ययनकी आवश्यकता है, और उसको केवल अनुवादोंके जरियेसे समझना कठिन है। किन्तु मराठा इतिहासको ठीकसे समझनेके लिए, सभी स्रोतोंको मौलिक रूपमें पढ़ना और उनके ऊपर सन्तुलित मनसे विचार करना परम आवश्यक है।

५. इस मराठा आदर्शके कुप्रभाव.

मैं स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहता हूं कि महाराष्ट्र धर्मका यह आदर्श आरम्भमें राष्ट्रीय ध्येयोंकी प्राप्तिमें चाहे कितना ही उपयोगी क्यों न रहा हो, पर मुझे तो यह किसी प्रकार स्वास्थ्यप्रद नहीं जान पड़ता। इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि इसने मराठोंको पानशी और उन्नति-पथसे विमुख बना दिया। राजका धर्म है उन्नति। और जब तक आनेवाले समयकी परिवर्तनशील आवश्यकताओंके अनुरूप परिवर्तन

की नजरके सामने आयी। इन डायरियोंसे किये गये संग्रहों में, जो हालमें प्रकाशित* हुए हैं, प्राचीन मराठा शासनके चिह्नोंका अमूल्य तथा रोचक विवरण दिया है। साथ ही उनसे निश्चित रूपसे यह सिद्ध होता है कि चाहे कुछ भी हो, वह शासन उतना निष्फल नहीं था जितना कि सामान्य रूपसे माना जाता है। प्रायः हर जगह जल पहुँचानेके प्रधान कार्यालय, मंदिर, तालाब, प्रतिमाएं, महल और दुर्ग अनेक सरदारों और जागीरदारों के ही बनवाये हुए मिलते हैं। ये लोग भारतके सुदूर भागोंमें नौकरी करते थे, पर उनकी घरेलू राजधानी एक प्रकारसे दक्षिणमें थी। सिंधिया लोगोंका जम्ब गांव (Jambgaum), होल्करोंके वफगांव और चंदवद (Wafgaum & Chandwad), गायकवाड़ लोगोंके दावदी और निम्बगांव (Davdi & Nimbgaum), मराठों द्वारा निर्मित अनेक प्रकारकी उन इमारतोंके केवल थोड़ेसे नमूने हैं जो आज देशमें पायी जाती हैं। नासिकमें पेशवाओंका पुराना महल, जो इस समय जिला-अदालतके अधिकार में है, वास्तवमें एक ऐसा स्मारक है जो कला का एक सुन्दर नमूना कहा जा सकता है। पर्वतकी चोटी पर बना हुआ जेजुरी (Jejuri) का मंदिर विशाल एवं सुन्दर है। इसका निर्माण बाजीराव द्वितीय ने करवाया था। वहां के मंदिर तथा घाटों तक जानेके रास्ते बड़े अच्छे बने हैं और उनको देखनेसे बनानेवालोंकी सावधानी एवं कुशलता का परिचय मिलता है। उसीके पास भूलेश्वर (Bhuleswar) का मंदिर भी एक सुन्दर इमारत है। कटराज (Katraj Tank), जहां से पूना नगरको पानी पहुँचाया जाता था, पेशवा बाजीराव द्वितीय द्वारा बनवाया गया था। पंढरपुर, येउर, चिंचवाद, अलंदी तथा गंगापुरके मंदिर एवं प्रतिमाएं वास्तवमें पेशवाओं द्वारा निर्मित-भवनों के उत्तम नमूने हैं। पत्थरकी मूर्तियोंका कौशल तथा परिमाण (proportion) तो वास्तवमें अवर्णनीय है। पिम्पलनेरमें भीमका घाट, पाबलमें मस्तानीका छोटा परन्तु खूबसूरत मक़बरा, वाईमें सोमेश्वरका मंदिर, करंजगांव और वेरुलका मंदिर और तालाब, नरसिंहपुरमें विट्ठल शिवदेवका बनवाया हुआ लक्ष्मी-नरसिंहका मन्दिर, मोरगांवका मन्दिर तथा धर्मशालाएं, बिदरकारों द्वारा निर्मित उरनका विष्णु मन्दिर—ये सब तथा इसी प्रकारकी बहुत सी दूसरी इमारतोंकी ओर यदि जनता का ध्यान उचित रीतिसे आकर्षित किया

* विविध ज्ञान-विस्तार (Vividha-Dnana-Vistar) फरवरी, १९१५—अगस्त, १९२०।

जाय, तो निश्चय ही यह सिद्ध हो जायगा कि मराठे कलात्मक कौशल, अथवा सौंदर्य-बुद्धि से पूर्णतया रहित न थे; और न ही उनका शासन उतना निष्फल था जितना कि बहुतोंने अनजानमें मान लिया है।

लेकिन कोरा ऐश्वर्य, बर्बादी और फ़िजूलखर्ची उनके स्वभावमें न थी, मन्दिरों, नदियों, पानी और निवास-स्थान की सुविधाओं, पहाड़ी रास्तों और घाटों, बड़े-बड़े और सुविधाजनक मकानोंकी ओर—जिनका निर्माण दिखावेके लिए नहीं, प्रयोगमें लाने और रक्षा करनेके लिए किया गया था—मरहठा शासकोंने पूरा ध्यान दिया, अतः उनके ऊपर इस बातका दोषारोपण नहीं किया जा सकता कि उन्होंने वास्तविक सार्वजनिक उपयोगिता के कार्योंकी उपेक्षा की। उत्तरी भारतमें भी जहाँ कहीं मराठोंका प्रभाव रहा वहाँ मराठा भवनोंकी यह प्रवृत्ति पर्याप्त रूपमें दिखायी पड़ती है। इसकी परीक्षा एवं अध्ययन आवश्यक है। तथ्य यह है कि सामान्य रूपसे मनमें यह अंकित हो जानेके कारण कि मराठे केवल तोड़-फोड़ करनेवाले और लुटेरे थे, किसीने मराठा-कालमें बनवाये हुए स्मारकोंका, जो दिखावटी न होते हुए भी प्रभावोत्पादक और सुन्दर भी हैं, बहुधा अनुसन्धान करने और उनके ऊपर प्रकाश डालनेकी परवा ही नहीं की। अभी तक ऊपर बताये हुए केवल दो जिलोंमें स्थूल-रूप से अन्वेषण किया गया है। महाराष्ट्रके दूसरे जिलोंमें तथा सुदूरवर्ती स्थानोंमें भी इसी प्रकारका अन्वेषण किया जाना चाहिए और छात्रों तथा विद्वानोंके उपयोगके लिए सभी प्राप्य पत्र(papers), वस्तुएँ तथा ऐतिहासिक रुचिके चिह्न प्रकाशमें लाये जाने चाहिए। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकता हूँ कि मराठा कार्यकलाप (activity) के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रोंमें ढेरके ढेर कागज़ात और अत्यन्त लाभदायक सामग्री अब भी मिल सकती है, जो ऐसे उत्साहपूर्ण कार्य-कर्ताओं तथा धनी प्रकाशकों द्वारा किये जाने वाले अन्वेषण एवं सहानुभूतिपूर्ण प्रबन्धकी राह देख रही है, जिनको हमारे ऐतिहासिक अतीत की चिन्ता है। वाईके रास्ते (Rastes), मिरज और सांगलीके पटवर्धन, औंध और कहूंदके प्रतिनिधि, भृंगारपुर के सर्वे, शिर्के, जाधव, मोरे, जेधे, निम्बालकर और घोरपडे—सभीके अपने-अपने कार्य एवं प्रभावके केन्द्र थे, जो इन ऐतिहासिक परिवारों की छोटी-छोटी राजधानियाँ कहे जा सकते हैं। उनमें उन्होंने २०० वर्षोंसे अधिक समय तक अपना ध्यान, धन और परिश्रम केन्द्रित रखा।

अपनी अनेक सहायक नदियों सहित गोदावरी तथा कृष्णा—दोनों पवित्र नदियोंकी मध्य और उपजाऊ घाटियोंमें न केवल अनुसन्धान एवं संग्रहके लिए अत्यधिक

के साथ लगे हुए हैं—एतिहासिक अनुसन्धानके लिए निश्चय ही आशातीत चिह्न दिखायी पड़ते हैं।

७. मराठा-साहित्य एवं समाज पर इस राजनैतिक आदर्शका प्रभाव.

चाहे कुछ भी हो, महाराष्ट्रमें होनेवाले वर्तमान अनुसन्धान कार्यके सम्बन्धमें इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि मराठोंका इस बात पर गर्व करना उचित है कि उनके पास छपे हुए «बखर» अथवा इतिहास, व्यक्तिगत और सार्वजनिक पत्र, सूचना रिपोर्टें, हिसाब किताब, सरकारी दस्तावेज, सनदें और निर्णय, संधियां, वंशावलियां, रोजनामचे और लिखी हुई ऐतिहासिक बातें तथा और न जाने कितनी तरहकी ऐतिहासिक सामग्री है। शायद भारतकी किसी भी जातिके पास उस अनुपात में अथवा उतने प्रकारकी ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती। उनका स्वरूप भी भारत के अन्य भागोंकी ऐतिहासिक सामग्रीसे भिन्न है। इन सब कागजातोंमें पत्र ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। चूंकि उनकी संख्या बहुत अधिक है, इसलिए हम उनकी सहायता से मराठा-इतिहास में घटित होनेवाली सभी महत्वपूर्ण घटनाओंका एक सम्बन्धित विवरण तैयार कर सकते हैं और लगभग हर बार विभिन्न दृष्टिकोणोंसे। चूंकि भाषा लोगोंके वास्तविक जीवन और व्यवसायकी बाहरी अभिव्यक्ति मात्र है, अतएव जब शिवाजी ने फ़ारसीको हटा कर मराठी भाषा को अपने दरबारकी भाषा का पद दिया तबसे मराठोंके कार्यकलापके फैलावके साथ-साथ मराठी-साहित्य की भी वृद्धि हुई। शिवाजी के समयसे स्थल-सेना, जल-सेना, किले, न्याय, लगान-सम्बन्धी हिसाब-किताब और दूसरे विषयोंके आवश्यक मामले, सभी मराठीमें लिखे जाने लगें। इस परिवर्तनने थोड़े ही समयमें उस भाषा को अत्यधिक समृद्ध बना दिया। कार्यवृद्धिके साथ-साथ अनेक व्यक्तियों तथा परिवारोंको, जो मामूली जगहोंसे आये थे, नवीन प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला।

शिवाजी के पहले मराठीमें गद्यका अस्तित्व नहींके बराबर था। उस समय समस्त उत्कृष्ट साहित्यकी रचना पद्यमें हुआ करती थी और वह भी भक्ति भाव और धार्मिकता से ओतप्रोत होती थी। परन्तु जब शिवाजी और उनके पिता ने अपना नया कार्य आरम्भ किया तब युद्ध, चढ़ाइयां, सन्धियां, व्यवसाय, एवं अन्य रोजके काम

बन गये जो तल्लीनता के साथ किये जाने लगे। इन सभीको लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता पड़ी। शिवाजी और उनके साथियोंके साहसिक कार्य एवं सफल कृतियोंने, जैसे उदाहरण के लिए अफ़जलखा के ऊपर उनकी विजय अथवा औरंगजेब से दरबार में भेंट अथवा तानाजी मलुसरे द्वारा सिंगढ की रोमांचकारी विजयने, शीघ्र ही लोगो की कल्पना शक्तिको अपनी ओर आकर्षित किया, और शिवाजी की माता जीजा बाई स्वयं उनको अमर करानेके लिए सबसे आगे बढ़ीं। उन्होंने बन्दी जनोंको उनके ऊपर ऐसे पद रचनेमें प्रोत्साहन दिया जो देश भरमें लोकगीतके रूपमें गाये जा सकें। इस प्रकारके कुछ गानोंका, जिनका लोक-प्रिय नाम «पवाड़े» (Powadas) है, अनुवाद ऐकवर्थ (Acworth) ने अंग्रेजी पद्योंमें किया है जिनसे मराठी न जानने वाले पाठकों को उन दिनोंकी क्रियाओंका कुछ आभास मिल जायगा। शिवाजी ने पारिभाषिक शब्दोंका फ़ारसीसे संस्कृतमें अनुवाद करके एक नया अधिकारी शब्दकोष बनवानेके लिए विद्वान् पंडितोंको नौकर रखा और राज-व्यवहार कोष अर्थात् दर्बार के प्रयोगके लिए पारिभाषिक शब्दोंका एक कोष तैयार करवाया। शीघ्र ही फ़ारसी तत्वके स्थान पर संस्कृत तत्व आने लगा और सभी प्रकारकी उन्नत रचना के लिए संस्कृतका प्रयोग किया जाने लगा। फलस्वरूप सौ वर्षोंके अन्दर-अन्दर भाषा का स्वरूप बिलकुल बदल गया। जबकि सोलहवीं शतीके सबसे बड़े मराठी-लेखक एकनाथ अपनी रचनाओंमें लगभग ७५% फ़ारसी शब्दों तथा उक्तियोंका प्रयोग करते हैं, तब १८वीं शताब्दीके मोरोपन्त की मराठी लगभग पूरीकी पूरी संस्कृत है जिसमें मुश्किलसे ५% फ़ारसी शब्दोंका मेल है।

अनुमान किया जाता है कि आधुनिक भारतीय गद्यका जन्म १९वीं शताब्दी अथवा अंग्रेजी शासन कालमें हुआ और उसका आरम्भ पश्चिमके महान् गद्यलेखकों के अनुकरणसे हुआ। जहां तक मराठीका सम्बन्ध है, यह विचार पूरी तौरसे सच नहीं है। बहुत ऊंचे दर्जेकी एक विशेष प्रकारकी गद्य-रचना का उदय मराठा त्रिया-बखरोंके १५० वर्षोंमें हुआ। व्यवसायों तथा राष्ट्रीय चिन्तनके अन्य विषयोंकी भांति भाषा भी अपनी उन्नति तथा वैभवके लिए अधिकारी संरक्षण चाहती है, और जब मराठीको आवश्यक संरक्षण प्राप्त हो गया तब वह और भी ज्यादा चमक उठी, जैसा कि प्रकाशित पत्रोंको देख कर हम स्वयं समझ सकते हैं। हम सब *लोगोंके लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि स्वराज्य एक राष्ट्रकी स्थितिमें विभिन्न* प्रकारके कितने तरीक़ोंसे सुधार कर देता है, और समस्त विश्व क्यों उसके लिए

निवासियोंने मराठोंके इस प्रकार प्रवेश करने को स्वास्थ्यप्रद एवं कल्याणकारी पाया। उन दिनों लोग तीर्थयात्राएं करते और देश भरमें हिन्दू शासनके पुनःस्थापनके लिए उत्साहसे पूर्ण होकर घर लौट आते थे। वे मराठा नेताओंको अपने धर्म* के मुक्तिदाता और संरक्षक समझते थे। बनारसके पटांकरों, दिल्लीके हिंगने, सॉगरके खेर, नागपुर और पश्चिमी बंगाल के कोल्हटकर और लखनऊ, मथुरा तथा प्रयाग के मामूली लोगोंके रिकार्डोंमें मराठों की इन पक्षीय (side) क्रियाओंके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इन शान्तिमय प्रयासोंमें कोई कटुता नहीं पायी जाती; उल्टे उत्तरके लोगोंने हृदय से उनकी सराहना की है। यदि कोई पुराने कागजातोंमें वर्णित तत्कालीन विवरणोंका सूक्ष्म अध्ययन करनेका कष्ट उठाये और विस्तारके साथ उनकी तुलना पहलेके मुसलमानी आक्रमणोंसे करे, विशेष रूपसे पठान-काल में, तो वह आसानीसे दोनोंके बीचके अन्तरको समझ सकता है और यह देख सकता है कि किस प्रकार मराठों का प्रवेश कोमलता एवं सहानुभूतिसे पूर्ण और मुसलमानोंका प्रवेश ध्वंसात्मक था।

८. उन्नतिकी सफल कृतियोंमें मराठों का उचित गर्व.

भारतकी विभिन्न जातियोंमें से अकेले मराठोंने मुगलोंकी बढ़ती हुई शक्तिका संगठित रूपमें सबसे जबर्दस्त विरोध किया, और अन्तमें उसको कुचल डाला। इस क्रियां को प्रगतिमें उन्होंने जिस योग्यता, तल्लीनता, धैर्य एवं निर्णयका परिचय दिया उसके कारण उन्हें बिना किसी कठिनाईके भारतका हितैषी कहा जा सकता है।

उन्होंने अपने ढंगसे और उस समयकी रीतिके अनुसार, देशके कल्याणके लिए, एक भारतीय शक्ति जो कुछ कर सकती थी वह सब किया। यदि उनको अचानक एक संगठित पश्चिमी शक्तिका मुकाबला न करना पड़ जाता तो इस बातकी पूरी सम्भावना थी कि वे भारतमें एक हिन्दूराज्य स्थापित कर लेते। इसके विपरीत, यदि शाहूकी मृत्यूके बाद पेशवा लोग मराठा शासनके सर्वे-सर्वा न बन जाते तो, दक्षिणकी स्थिति अंग्रेजोंके अनुकूल हो जाती, और प्लासी तथा वांडीवाश, जिन्होंने अमरीक बंगाल

* उत्तर और दक्षिणके बीच स्थापित होन वाले सांस्कृतिक सम्पर्कके लिए लेखक की «मराठों का नया इतिहास» के खंड २, अध्याय २, वर्ग २ तथा अध्याय १० वर्ग ४ (सामाजिक सम्पर्क) देखिये।

और मद्रासमें पहलेपहल उनकी प्रभुता स्थापित की, के साथही साथ पश्चिमी भारत में भी उनके हस्तक्षेपके लिए तुरन्त मार्ग तैयार हो जाता। इसलिए मराठोंको कमसे कम इस बातका श्रेय तो देना ही पड़ेगा कि उन्होंने पश्चिमी भारत पर अंग्रेजोंका आक्रमण लगभग पचास वर्षके लिए टाल दिया; अन्यथा सन् १७५७ की प्लासीके साथही साथ दक्षिणमें अपना प्रतिरूप दिखायी दे जाता और पश्चिमी भारतके लिए युद्धका परिणाम वही होता जो बंगालके लिए हुआ था। मेरी सम्मतिमें, जिस जाति ने मुसलमानोंकी शक्तिको चूरचूर कर दिया, जिसने भारतके सभी भागोंमें अंग्रेजोंको आगे बढ़नेसे बहुत दिनों तक रोक रखा, जिसने गोंडों और सुदूर उत्तर तथा दक्षिण की अन्य जातियोंको जीता और सभ्य बनाया, जिसने एक चतुष्कोण प्रदेशमें, जिसके मोटे तौर पर नागपुर, सूरत, गोआ और तंजौर ये चार कोने कहे जा सकते हैं, अपने प्रभावके स्थायी चिह्न बहुतायतके साथ छोड़े, जो व्यवस्था, शान्ति एवं संस्कृतिकी प्रतीक थी और अन्तमें जिसने भारतकी आत्माको बचाया और उसमें एक नवीन आशा का संचार किया, वह जाति अपने अतीतके इतिहास पर न्याययुक्त गर्व करनेकी अधिकारी है।

अभ्यास जरूर होता। यदि वे अपने आप, तथ्योंको ठीक करने, अलग करने और क्रमबद्ध करनेका कष्ट नहीं उठाते, और यह जाननेके लिए नहीं रुकते कि उनकी तर्क बुद्धि कहां तक उन तथ्योंकी सत्यता को मानने या न माननेके लिए तैयार होगी, तो फिर वह एक विज्ञान न रह जायगा। इतिहासके लेखक चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों, इतिहासमें हमें विश्वास और प्रमाणके आधार पर कोई भी बात स्वीकार न कर लेनी चाहिए।

२. समस्त साधनोंसे प्राप्त सामग्रीके संकलनसे भारतीय इतिहासकी रचना अभी *होनी है.*

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अनुसंधान कार्य कैसे आरम्भ करना चाहिए और उसके प्रतिबन्ध क्या-क्या हैं। जहां तक भारतीय इतिहास का सम्बन्ध है, हम व्यावहारिक रूपसे अभी तक प्रारम्भिक स्थितिमें ही हैं। योरोप का इतिहास जैसे इंगलैंड, फ्रांस अथवा प्राचीन रोम और यूनान का इतिहास अनेक ऐसे बड़े-बड़े विद्वानोंके हाथों, बहुत दिन पहले ही इन सीढ़ियोंसे होकर गुजर चुका है, जिन्होंने सामग्रियोंका अलगाव किया है और उनको एक ऐसा रूप दे दिया है, जो करीब-करीब स्थिर ही माना जा सकता है। एक दो नये तथ्य अब भी प्रकाशमें आ सकते हैं, और किसी-किसी वृत्तान्तके विवरण में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर सकते हैं; परन्तु मुख्य विषयका अध्ययन पूरी तौरसे किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त योरोपके स्वतंत्र राष्ट्र प्रतिदिन इतिहासकी रचना कर रहे हैं; पर भारत में, १९वीं शती के मध्यसे हम प्राय: किसी तरहके इतिहास का निर्माण न कर पाये। यही कारण है कि ब्रिटेन की विजयी शक्तिके सम्मुख हमारा पतन होनेके समयसे, भारतीय इतिहास हमारे लिए रोचक न रह गया, और उसमें हमारी कल्पना, भावना अथवा गर्व को उत्तेजित करनेकी शक्ति न रह गयी। उदाहरणके लिए, मराठे यद्यपि पानीपतके मैदानमें हार गये थे, तथापि उस स्मरणीय घटनाके सभी वृत्तान्तों, व्यक्तियों अथवा अंगोंके प्रति होनेवाली उनकी रुचिमें इतनी सजीवता है कि उनके कवि, अनुसंधानकर्त्ता, बन्दीजन, अभिनेतागण, उपन्यासकार, प्रतिदिन उत्साह के साथ उसके विषयमें लिखनेमें अपनी शक्तियोंका अभ्यास कर रहे हैं। शिवाजी और अफ़जल खांकी घटना अथवा पेशवा नारायणराव की हत्या समानरूपसे मराठा लेखकों को आकर्षित करती है और उन्हें अपनेमें लीन कर लेती है। यह स्वाभाविक ही है कि

हमारे पूर्वजों अथवा ऋषियों और धर्मके नायकों की कृतियां हमारी कल्पना शक्तिको प्रभावित करें।

फिर भी, इतिहास को, किसी सम्प्रदायविशेषके दृष्टिकोणसे नहीं, बल्कि एक स्थिर लक्ष्य सामने रखकर संकलित रूपमें उन सभी तत्त्वोंकी सहायता से, जिनका उस कालसे कोई सम्बन्ध हो जिसे हम ले रहे हैं, भारतके एक अकेले पूर्ण, राष्ट्रीय इतिहासको ढालने के लिए इन सभीको ध्यानमें रखना है। और चूंकि हमें भारतके इस प्रकार के संयुक्त राष्ट्रीय इतिहासका निर्माण करना है, इसलिए जैसे-जैसे हम अपने अधिक पेचीदा समयमें पहुंचते जाते हैं वैसे-वैसे हमें अपने अध्ययनके लिए अधिक सामग्री की आवश्यकता पड़ती जाती है। प्राचीनकालमें हमारा जीवन अधिक पृथक्, निषेधक (exclusive) और शायद अधिक शान्त था; परन्तु उसके बादके समयमें, विजय और शक्ति के बढ़ते हुए संघर्षके साथ साथ भारतीय मामले, चाहे वे राजनीतिक हों अथवा सामाजिक, एक दूसरेमें अधिक मिल गये; १८वीं शताब्दी के इतिहासके साथ, जब कि मुग़ल शासनके पतनके साथ, शक्ति और प्रभुता के लिए होने वाली छीनाझपटी अधिक तीव्र हो गयी और उसके प्रतिस्पर्धियों (competitors) की संख्या में वृद्धि हो गयी, यह बात विशेष रूप से दिखाई देने लगी। इस प्रकार हम आसानीसे इस बातका अनुमान कर सकते हैं कि सामग्रीके किन-किन विभिन्न साधनोंकी खोज हमें अनिवार्य रूपसे करनी चाहिए, और किसी दी हुई घटना को पर्याप्त मात्रा में, स्वीकार करने योग्य, मूल्यांकन पर पहुंचनेके पूर्व किस दिशा में हमें नये प्रकाशको ढूंढना है। हाल में ही हम अपने कर्तव्यके इस अंगकी ओर से सचेत हुए हैं, और अब देशके विभिन्न विद्वानों तथा संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय कार्यके इस क्षेत्रमें उत्साह पूर्वक प्रयत्न किये जा रहे हैं। लगन और साधना के साथ किये गये कार्यका फल सदैव मीठा होता है। आप आसानीसे इस बातकी कल्पना कर सकते हैं कि उदाहरणके लिए शिवाजी का जीवन-चरित्र उस दिशा में सदैवके लिए किस प्रकार अधूरा और एकपक्षीय पड़ा रहता यदि प्रोफेसर यदुनाथ सरकारने, उस समय जबकि उन्होंने अनायास ही औरंगजेब का अध्ययन प्रारम्भ किया था—वही औरंगजेब जिसने अपने लम्बे और क्रियाशील जीवनका क़रीब-क़रीब आधा हिस्सा मराठोंके बीचमें बिताया था—अपनी विद्वता और अनुसन्धान की महान् शक्तियोंको उस ओर न लगा दिया होता। मराठा इतिहासके लिए सरकार की देन (contribution) सचमुच अमूल्य है, विशेष रूपसे उन सामग्रियोंके सम्बन्ध में, जो न केवल फ़ारसीमें, बरन् योरोप की विभिन्न भाषाओंमें प्राप्य हैं और जिनको

उनके तरीकों और उनके व्यवहारका अनुसरण करते है, उन्होंने ऐतिहासिक आलोचना और प्रकृतिमें होने वाली उस अतीव उन्नतिको समझ लिया है जो इन दो प्रमुख विद्वानोंके द्वारा विषयमें की गयी है।

भारतीय इतिहासके लिए यह एक शुभ संयोग था कि न केवल दो अलग-अलग दृष्टिकोणोंसे, वरन् दो मुख्य प्रादेशिक स्रोतोंसे भी, समस्या का हल करनेके लिए ये दो योग्य कार्यकर्ता प्राप्त किये जा सके—उत्तरी भागको प्रस्तुत करने वाले सरकार और मराठी सामग्रियोंकी छान-बीन करने वाले तथा दक्षिणी भागको प्रस्तुत करने वाले राजवाडे। सौभाग्यसे, इस कार्यके लिए उनके पास पहलेसे जो कुछ सामग्री थी, वह भी एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न थी। सरकारने विश्वविद्यालयको चमत्कृत जीवन वृत्तिके पश्चात् कुछ दिनों तक कालेजों तथा विश्वविद्यालयोंमें अध्यापन कार्य किया। राजवाड़े स्वभावसे ही जोशीली प्रवृत्तिके थे। विश्वविद्यालयमें उनका वह जोश ठंडा होनेके बजाय और बढ गया और बी० ए० पास करनेके बाद उन्होंने अपने को राष्ट्रीय इतिहासकी सेवा में पूर्णतया अर्पित कर दिया। उन्होंने ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए आवश्यक, अनेक विषयोंका अध्ययन किया, जैसे योरोप और विश्वका प्राचीन तथा आधुनिक इतिहास, तुलनात्मक व्याकरण, दर्शन और शिलालेख-विद्या। यद्यपि वे अपने आप अलग-अलग और दूसरी-दूसरी दिशाओंमें काम करते रहे तथापि सौभाग्यसे कुछ ऐसा संयोग हुआ कि दोनों ने मराठा इतिहासके सामान्य क्षेत्र पर अपने प्रयासोंको केन्द्रित किया। प्रो० सरकारने औरंगजेब को अपने विशेष अध्ययन का विषय बनाया था, अतएव उनको शिवाजी के कालका अनुसन्धान करने और मौलिक मराठी स्रोतोंसे उसके ऊपर काम करनेकी आवश्यकता पड़ी। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि उन्होंने बड़े उत्साहके साथ, सामदायक ढंगसे उनके (मराठी-स्रोत) ऊपर अधिकार कर लिया है। निश्चय ही, हमको हृदयसे इस संयोगका गुणगान करना चाहिए। *

* सरकारने अकेले, अपनी «औरंगजेब का इतिहास», «शिवाजी और उसका समय», तथा «मुगल साम्राज्य का पतन» (४ भागोंमें), के द्वारा क़रीब-क़रीब पूरे मराठा कालके इतिहासका पुनर्निर्माण कर डाला है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भारतीय विद्वानोंने भारतीय इतिहासके विशेष क्षेत्रों पर पुस्तकें लिखी हैं, परन्तु मैं चूंकि केवल महाराष्ट्रके इतिहासको ले रहा हूं, इसलिए अपनी समालोचना में इनको शामिल नहीं करता हूं।

गत शताब्दीके आठवें दशकके प्रारम्भिक भागमें शिवाजी के जीवनका इतिहास अकस्मात् प्राप्त हो जानेके कारण ग्रांट-डफ (Grant Duff) की महत्त्वपूर्ण रचना की आलोचना स्वर्गीय जस्टिस रानाडे तथा उनके साथियोंके हाथों से हुई। तभी यह पता लगा कि ऐतिहासिक रुचिके अनेक उपयोगी «बखर» और कागज़ात विभिन्न स्थानोंमें हैं, जिनको यदि प्रकाशित कर दिया जाय तो केवल ग्रांट-डफ़ की ग़लतियां ही ठीक न की जा सकेंगी, बल्कि उसके इतिहासमें बहुतेरी ठोस बातें जुड़ जायंगी। ऐतिहासिक काग़ज़ोंके साथ-साथ प्राचीन मराठा लेखकोंकी कविताओं तथा निबन्धोंकी अनेक मौलिक पांडुलिपियां भी खोज निकाली गईं। नवयुवक कार्यकर्ताओंके एक दल ने, जिनमें से अधिकांश हाई-स्कूलों में अध्यापक थे, पद्य तथा इतिहासमें अनुरक्त (devoted) एक मासिक-पत्रिका में उनका सम्पादन तथा प्रकाशन करना आरम्भ किया। इस प्रकार १८७८ ई० में «काव्येतिहास-संग्रह» का जन्म हुआ। हर्षका विषय है कि उन उत्साही कार्यकर्ताओंमें से एक अभी जीवित हैं; उनका नाम है राव बहादुर काशीनाथ नारायण साने।* इस समय वे ७५ वर्ष के हैं। उनकी विद्वत्ता और मराठा-इतिहासके हितमें उनकी तल्लीनता मेरी तरफ़के लोगोंको खूब अच्छी तरह मालूम है। यह पत्रिका १२ वर्ष तक चलती रही और उसने ऐतिहासिक सामग्रियोंके तीस खंड छापे, जिनमें से अधिकांश इतिहास थे, और एक दो में ऐसे मौलिक पत्र तथा दस्तावेज़ छपे थे जो बड़े महत्त्वपूर्ण थे।

४. राजवाड़े.

तो भी, इस प्रकाशनसे जनता के मनमें इतिहासके प्रति उत्कट रुचिकी जागृति न हुई; और समर्थनके अभावके कारण पत्रिका बन्द हो गयी। इस प्रकारकी रुचि उत्पन्न करनेका श्रेय निश्चय ही विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़ेको है, जो इस समय साठसे† ऊपर हैं, और अब भी अपना कार्य कर रहे हैं, आधुनिक भारतके ऊपर नहीं, प्राचीन भारतके ऊपर। अपने पास कोई साधन अथवा धन न होनेके कारण कॉलेज छोड़नेके बाद उन्होंने घर-घर जाकर काग़ज़ोंको ढूंढ़ना शुरू किया। पर ऐसा करनेके लिए वे

* १७ मार्च, १९२७ को इनका देहान्त हो गया।
† जुलाई, १८६४ में जन्म हुआ, और ३१ दिसम्बर, १९२६ में स्वर्गवास।

भरकम और भद्दी है, तथा अपने पाठकोंकी सुविधा या योग्यता का ध्यान कभी नहीं रखती। वह किसी की रुचिकी सामग्री नहीं प्रस्तुत करते। उनके लम्बे प्राक्कथन और विवेचनाएँ कहीं भी और किसी भी पुस्तकमें आ जाती हैं, जिनको समझना प्रायः साधारण विद्यार्थीके बूतेके बाहर होता है, परन्तु जब उनका अध्ययन सावधानीके साथ किया जाता है, तो सारी मेहनत वसूल हो जाती है। उनमें केवल उच्च श्रेणीका पांडित्य ही नहीं मिलता, वरन् मर्मभेदी आलोचना भी मिल जाती है।

५. परसनीस (Parasnis).

राजवाड़े के उदाहरणसे शीघ्र ही अन्य कार्यकर्त्ता मैदानमें उतर आय। सतारा के स्वर्गीय राव बहादुर डो० बी० परसनीस ने इस कार्यके लिए अपनी सेवा प्रदान की, *जिसका स्थान राजवाड़े की सेवाओंके बाद ही आता है, और जो शायद अतीतकी* घटनाओंका अध्ययन एवं प्रयोग करने में, विद्यार्थीको तुरत-सेवा करनेके लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। परसनीस को उच्च शिक्षा अथवा विश्वविद्यालयकी शिक्षा न मिल सकी थी, परन्तु ईश्वर ने उन्हें अद्भुत स्मरण शक्ति और काम करनेकी असीम क्षमता प्रदान की थी, जिसके बल पर उन्होंने अपना काम किया, और वह भी *बिल्कुल अपने आय-साधनोंसे। उन्होंने काग़ज़ों, कठिनता से प्राप्त होने वाली पुस्तकों,* चित्रों और अन्य सामग्रियोंको एकत्र किया, जिनसे सतारा का ऐतिहासिक संग्रहालय बना, और जो अब सार्वजनिक प्रयोग* के लिए धरोहरके रूपमें सरकारको सौंप दिया गया है। जब कि राजवाड़े ने सरकारसे बिना किसी तरह की मदद लिये, सारा काम अपने आप किया तो दूसरी ओर परसनीस ने सरकारकी सहायता और सहयोगका अधिक से अधिक उपयोग किया। उन्होंने भी «भारतवर्ष» और «इतिहास-संग्रह» नाम की मासिक पत्रिकाओंमें सामग्रियाँ (ऐतिहासिक) के लगभग ४० खंड छापे हैं, जो मेरे विचारमें मोटे तौर पर गिननेसे लगभग १५,००० पृष्ठोंमें होंगे, और जिनके *मुख्य भागमें प्रसिद्ध मराठा राजनीतिज्ञ नाना फ़ड़नीस का «दफ़्तर» या रिकार्ड है* जो उनकी (नानाकी) मृत्युके बाद महाबलेश्वर की पहाड़ियोंके दक्षिणी भागमें स्थित मेनावली (Menavli) में, उनके घरमें, रख दिये गये थे।

* यह संग्रहालय १६३६ में पूना में स्थापित कर दिया गया।

१. खरे.

दूसरे नमूने और भिन्न साधनोंसे युक्त, परन्तु अध्ययन एवं कार्यमें समान रूपसे रत एक अन्य विद्वान् थे, स्वर्गीय वासुदेव वामन शास्त्री खरे, जो मिराज के हाई-स्कूलमें संस्कृत अध्यापक थे। उन्हें मिराज (दक्षिणी महाराष्ट्रमें) के पटवर्धन सरदार के परिवारवालोंके पास लाभदायक पत्र प्राप्त हुए, जिनका सम्बन्ध १८वीं शतीके अंतिम अर्द्ध भागसे था। उन्होंने बुद्धिमानीके साथ उनको छांटा और सुव्यवस्थित एवं सुझाव-पूर्ण भूमिकाओंके साथ उनकी व्याख्या की और उन्हें प्रकाशित किया। अब तक वे १४ पुस्तकें लिख चुके हैं जिनमेंसे हर एकमें ६०० पृष्ठ हैं। खरे की अपूर्व बुद्धि, राजवाड़ेकी अपूर्व बुद्धिकी तरह, ऊँची उड़ान न लेते हुए भी, सामान्य विद्यार्थीके लिए तत्काल अधिक लाभदायक सिद्ध होती है। उनके पुत्र ने अब पंद्रहवीं पुस्तक प्रकाशित की है।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त भारतीय ऐतिहासिक रिकॉर्ड कमीशन (Indian Historical Records Commission) भी, जिसकी बैठकें विभिन्न केन्द्रोंमें होती रहती हैं, उस उत्कट रुचिका परिणाम है जो सरकारने इस राष्ट्रीय विषयके प्रति दिखायी है। व्यक्तिगत प्रयासोंमें, जिनकी चर्चा ऊपरकी जा चुकी है, जो कुछ कमी थी वह बम्बईकी सरकार द्वारा पूरी कर दी गयी। उसके पास पुराने मराठी और अंग्रेजी रिकार्डोंके ढेरके ढेर थे जो बम्बईके सरकारी कार्यालय (Bombay Secretariat) और पूना के एलिनेशन ऑफिस (Alienation Office) में रखे हैं। पूना के एलिनेशन दफ्तरमें वे कागजात रखे हैं जो «पेशवा का दफ्तर» कहलाते थे। उनमेंसे परसनीसने छांट-छांट कर कागज निकाले और प्रत्येक पृष्ठके निचले भागमें उपयुक्त संक्षिप्त सूचनाओंके साथ, पत्र-व्यवहार तथा अन्य पत्रों (Papers) की नौ सुन्दर पुस्तकें छपवाईं। वे «पेशवाओंके रोजनामचों» के नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु «पेशवा का दफ्तर» पुराने कागज़ोंका, जिनमेंसे अधिकांश शासन-सम्बन्धी और कुछ ऐतिहासिक हैं। अथाह भंडार है। वहां मराठी भाषा और मोड़ी-लिपिमें लिखे हुए २७,००० से अधिक बंडल और लगभग ८,००० अंग्रेजीकी फ़ाइलें हैं। हालमें, सरकारने इन रिकार्डोंकी पूरी तौर पर जांच करवाई है, और अंग्रेजीके फुट-नोटों सहित कई हजार पत्र (letters) छापे हैं। इस कामसे मराठा-इतिहास का बहुत बड़ा उपकार हुआ है। बम्बई-सरकारकी ओरसे इन रिकार्डोंकी एक सर-

योगी हस्त-पुस्तिका (छोटी किताब) या मार्ग-दर्शक भी निकाल दिया गया है, और सच्चे विद्यार्थियोंको अब वहीं जाकर रिकार्डोंका निरीक्षण करनेकी पर्याप्त सुविधाएँ दे दी गई है (सरकारकी तरफ़से)।

७. पूना का बी० आई० एस० मंडल.

परन्तु यह सोच कर कि जनता के मनमें उचित ऐतिहासिक प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए व्यक्तिगत प्रयास पर्याप्त न थे, राजवाड़ेने बहुत दिन पहले ही यह सुझाव दिया था कि हमको प्रदेशविशेषमें पाई जानेवाली ऐतिहासिक सामग्रियोंकी पूरी तौरसे छानबीन करनेके लिए, उनको इकट्ठा करने, उनकी विवेचना करने और सुभीतेसे उनको प्रकाशित करनेके लिए, महाराष्ट्रके प्रत्येक मुख्य नगरमें तथा बाहर, विद्वानों और कार्यकर्ताओंकी छोटी-छोटी संस्थाएं बना लेनी चाहिए, ताकि अन्तमें उनके द्वारा किये गये कार्योंका एकीकरण किया जा सके। निश्चय ही ऐसी ऐतिहासिक समाओंका जाल सबसे अधिक लाभदायक होता, पर पूना, सतारा, धूलिया, बड़ौदा, इन्दौर आदि कुछ जगहोंको छोड़ कर, यह सुझाव सब जगह नहीं माना गया। फिर भी, उन सबमें पूना के «भारत इतिहास संशोधक मंडल» ने बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली है। उसके पास विभिन्न श्रेणियोंके, एक हजारसे अधिक चंदा देने वाले सदस्य हैं, अग्निसे सुरक्षित एक सुन्दर भवन है और छपी हुई सामग्रीकी ३० से अधिक पुस्तकें है, जिनमें पुराने कागज़ों, आलोचनात्मक निबन्धों तथा सूचनाओंका एक काफ़ी बड़ा भंडार है। «मंडल» की सीमा बड़ी विस्तृत है जैसा कि उसके गर्वीले नामसे विदित होता है। इस मंडलने केवल इतिहासके लिए ही सारा परिश्रम नहीं किया, वरन् प्राचीन काव्य, घरेलू कथा-कहानियां, और देशमें गाये जानेवाले बिरहोंके सकलनकी ओर ध्यान देकर, भाषा-सम्बन्धी अध्ययन भी किये जिनसे उनके प्रायसे ज्यादा छपे हुए पन्ने भर गये। परन्तु मंडलकी सबसे बड़ी सेवा नई सामग्रियां उपस्थित करना नहीं है—उसका इससे भी बड़ा काम है—अपनी अर्द्ध मासिक तथा वार्षिक बैठकोंमें वादविवाद करना, असंख्य गूढ़ प्रश्नों एवं समस्याओंका हल निकाल लेना, उनके सम्बन्धकी छोटी-छोटी बातोंका पता लगाना, प्राप्य प्रमाणको अलग करके तिथियों और घटनाओंको निर्धारित करना और इस प्रकार बहुतसे वाद-विवादों को तय करना।

शिवाजी, उनकी माता, उनके पिता और पितामह की जीवन-वृत्तियों की तथा उनके बहुतसे मामलोंकी जांच अच्छी तरहसे कर ली गयी है और उस प्राचीन कालसे सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी लाभदायक बातोंका पता लग गया है। अकस्मात् स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने कठिनाईसे प्राप्त होने वाले उस दस्तावेजको ढूढ़ निकाला जो « जेधे शकावली » के नामसे प्रसिद्ध है और जिसके कारण शिवाजी के जीवन तथा इतिहासको, और उनकी गतिविधियोंको अधिक निश्चित रूप प्राप्त हो गया है। मंडलमें लोकप्रिय समर्थनका अभाव है, विशेष रूपसे धनी वर्गों का। दक्षिणमें अनेक निर्धन अनुसधानकर्त्ता धनाभावके विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं, और यदि पर्याप्त धन मिल जाय तो « मंडल के » प्रकाशनोंकी संख्या में शीघ्र ही प्रमूल्य वृद्धि हो जायगी। उसका प्रचार भी कम ही है, क्योंकि उसका सारा काम मराठीमें होता है, जो उस भाषा को न जानने वाले लोगोंके पास तक नहीं पहुंच सकता। धूनिया सस्था के कार्यकर्त्ताओं ने पहले अपनी शक्तियों तथा सम्प्रदायके साहित्यकी ओर, जो प्रकृति से बड़ा प्रभावोत्पादक होते हुए भी मराठोंकी मुख्य ऐतिहासिक धारा को केवल आंशिक रूपमें छू पाता है, निर्देशित किया। अब उन्होंने एक भवन बनवा लिया है जहां राजवाड़े द्वारा संकलित सामग्रियां सुरक्षित हैं और अध्ययनके लिए दी जाती हैं। वे मराठीमें « संशोधक » नामकी एक साप्ताहिक पत्रिका निकालते हैं और राजवाड़े द्वारा संकलित सामग्रियों को मुद्रित करते हैं।

ये सारे प्रकाशन, और अन्य व्यक्तिगत कार्यकर्त्ताओंके प्रकाशन, सब मिलाकर, मेरे विचारसे, लगभग ३०० छपी हुई पुस्तकें या मराठोंके लगभग एक लाख पन्ने हो जायेंगे, और लगभग इसका चौथाई और फ़ारसी, अंग्रेजी तथा दूसरी भाषाओंमें छपा हुआ मिल जायगा, जो विशेष रूपसे मराठा इतिहास से सम्बन्धित है। एक बार कुछ मित्रोंकी सहायता से मैंने विषयके ऊपर लगभग ३०० छपी हुई पुस्तकें गिनी थीं। यह एक बहुत बड़ा, भयंकर बोझ जान पड़ता है, पर उसका वास्तविक रूप क्या है, और उसने किस प्रकारकी सेवा की है, ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनके विषयमें, मैं सोचता हूं कि मुझे कुछ अवश्य कहना चाहिए। शिवाजी-कालके इतिहासका, जिसकी तिथि मोटेतौर पर १६००-१७०७ तक है, क़रीब-क़रीब नव-निर्माण हो चुका है। चूकि अब लगभग ३० वर्ष पहलेके मुक़ाबिलेमें हमारे पास कहीं अधिक ठोस तथ्य मौजूद हैं, इसलिए पूर्ण और प्रामाणिक विस्तृत वर्णनकी सहायता से शिवाजी और उनके पूर्वजों की जीवन-वृत्तियोंको पूर्णरूप से बदलनेका समय आ गया है। इसका श्रेय मुख्य रूपसे,

महाराष्ट्रके बाहर, सर यदुनाथ सरकार को मिलना चाहिए, क्योंकि उनके बिना, फारसी साधनों तथा योरोपीय रिकार्डोंका प्रयोग पहले न किया जाता; पर वह श्रेय समान रूपसे पूना के «भारत इतिहास मंडल» के गांव-गांव जाकर लगनके साथ काम करने वाले सदस्योंके समूहको भी मिलना चाहिए, जिनके अगुआ राजवाड़े थे। सर यदुनाथ सरकारने हाल में जयपुरके प्राचीन-ग्रंथ-रक्षा-गृह में शिवाजी और उनके उत्तराधिकारियोंके जीवनसे सम्बन्ध रखने वाले बहुतसे मूल्यवान्, तत्कालीन कागज़ात और मुग़ल-दर्बारके समाचारवाहक पत्र खोज निकाले हैं। इस समय सरकार अपने बिल्कुल हालके प्रकाशन, «दि हाउस ऑफ़ शिवाजी» में उपयुक्त रूपमें इनको प्रकाशित करनेमें व्यस्त हैं।

मराठा-इतिहासके दूसरे काल पर भी अर्थात् १७०७ से १८०० तक, जिसको मोटेतौरसे पेशवायुग कहा जा सकता है, काम किया जा चुका है। अभी थोड़े दिन पहले तक, पूर्वार्द्ध, अर्थात् १७६१ में होने वाली पानीपत की लड़ाई तक केवल थोड़ीसी सामग्रियां प्राप्त थीं। राजवाड़ेकी पहली सात पुस्तकोंने इस युगकी पुनर्व्यवस्था सम्भव कर दी। उसके लिए इरविनकी «बादके मुग़ल बादशाह» (Later Mughals) का पहला और दूसरा भाग भी आंशिकरूपमें उपयोगी है। डा० आशीर्वादीलाल की «अवधके पहले दो नवाब» और «शुजाउद्दौला», डा० खानका «निज़ामुलमुल्क», डा० रघुबीरसिंह का «मालवा-परिवर्तनमें» (Malwa in Transition), इस युग पर हालमें लिखी हुई कुछ पुस्तकें हैं। अब बम्बई-सरकार द्वारा अपने पूना के प्राचीन-ग्रंथ-रक्षा-गृह से प्रकाशित होने वाली तमाम सामग्रियोंका सावधानीके साथ अध्ययन और पहले तीन पेशवाओं के उचित इतिहास का निर्माण करनेके लिए उनका एकीकरण किया जा सकता है। इन संकलनोंके कारण बहुतसे ऐसे नये लेखक और घटनाएं प्रकाशमें आ गई हैं, जिनको पहले शायद ही कोई जानता रहा हो। पानीपतके बाद वाले समय पर पहले ही से बहुत अधिक मौलिक सामग्रियां हैं। और जिस प्रकार पहलेके पूर्वार्द्धमें काग़ज़ातोंकी कमीके कारण इतिहासकारके काममें बाधा पड़ती रही है, उसी प्रकार यहां पर (उनके आधिक्यके कारण) चुनाव एक कठिन कार्य बन जाता है। पेशवा नारायणरावकी हत्या से लेकर सालबाईकी सन्धि तक, १७७३-८३ के दस वर्ष मौलिक पत्रोंसे भरे पड़े हैं। मुझे गिनकर आश्चर्य हुआ कि उनकी संख्या मराठी और अंग्रेज़ीमें छपे हुए ६,००० पृष्ठोंसे अधिक है। दि पूना रेज़ीडेंसी करेस्पॉन्डेन्स सिरीज़, ग्वालियर द्वारा प्रकाशित महादजी

सिंधिया के कागज़ात, दि गुलगुले दफ़्तर ऑफ़ कोटा और सतारा संग्रहालयके कागज़ातोंसे तैयार किये हुए सतारा इतिहास सभा के दो खण्ड, ये कुछ और साधन हैं जिनसे विद्यार्थी लाभ उठा सकता है।

जैसा बिल्कुल स्वाभाविक ही है—समयने बहुतसे पुराने रिकार्डोंको नष्ट कर डाला है, पर हम जैसे-जैसे वर्तमान समय के निकट पहुँचते जाते हैं, वैसे-वैसे कागज़ात के ढेरके ढेर हमारे उपयोगके लिए प्राप्त होते जाते हैं। निकट भविष्यमें महाराष्ट्रमें हमारे सामने संग्रह करने के लिए नई सामग्रियोंकी खोज करनेकी समस्या उतनी बड़ी नहीं है जितनी कि खोजी हुई सामग्रियोंका संकलन करने, मुद्रित करने, प्रकाशित करने और उनके आधार पर एक विश्वसनीय इतिहासका निर्माण करनेके लिए उनका उपयोग करनेकी है। एक साथ जगह त्रुटि रह जाना तो निश्चित ही है, पर कालकी गतिके साथ-साथ वे दूर की जा सकती हैं। अतएव यदि हम अब तक मराठीमें लगभग ३०० पुस्तकें छाप चुके हैं, तो उन कागज़ पत्रोंकी चर्चा तो छोड़िये जो व्यक्तिगतरूपमें लोगोंके पास हैं और जिनकी अभी तक कोई खोज खबर नहीं ली गई है। पूना, धूलिया, कोटा और दूसरे स्थानोंमें रखे हुए ढेरके ढेर कागज़ोंसे जो अभी तक बिना छंटे पड़े हैं, उतनी ही और किताबें आसानीके साथ, लाभदायक ढंगसे निकाली जा सकती हैं।

८. सरदेसाई.

सामग्रियोंके ऊपर जितनी भी किताबें छपी हैं उन सबमें केवल खरे की पुस्तकोंमें सब चीज़ें सावधानीके साथ क्रमसे रखी गयी हैं और उनकी व्याख्या की गयी है, जब कि राजवाड़े और पारसनीसकी रचनाओंमें न तो कोई व्यवस्था है और न तारतम्य। अतएव ऐतिहासिक क्रम और विषयोंके अनुसार उनको पढ़ने, उनका वर्गीकरण करने सूची बनाने और ढंगसे रखनेका एक काम है जो मैंने आरम्भ किया था और जिसको अब «मराठी रियासत» के आठ खंडोंमें पूरा कर लिया है। यह आरम्भसे लेकर १८१८ ई० में मराठा शक्तिके नाश तक है। इस समय मैं «पेशवा के दफ्तर*» से प्रकाशित नई सामग्रियोंकी सहायता से अपनी मौलिक मराठी पुस्तकोंको दोहराते हुए,

* मैं अपनी «रियासतों» के संशोधित संस्करण निकालता रहा हूँ, और अब शाहूके शासन कालके अन्त तक पहुँच गया हूँ। आगेका काम दफ़्तरकी किताबोंके कारण रुका हुआ है।

रहे है। इस क्रिया के लिए तमाम लिखापढ़ी की जरूरत है। और भी बाहरी व्याख्यानों, ऐतिहासिक रुचिकी विवेचनाओं अथवा लेखोंको, जो देश भरकी विभिन्न पत्रिकाओं तथा समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होते रहते है, सावधानीके साथ देखते रहना बड़ा जरूरी हो जाता है। अपने पूरे परिश्रमके साथ भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं सब पूरा कर चुका या अब कुछ बाकी ही नहीं बचा। जरूर बहुत सी लाभदायक बातें मेरी नजरसे उतर गई होंगी। मेरा अध्ययन बढ़ता जाता है। मेरे अपने नोटों (notes) की सूचियां भी आये दिन बढ़ती जा रही हैं, और एक मनुष्यके काम करनेकी शक्तियोंसे परे होती जा रही है। इस काम में मैं दूसरोंकी सहायता का भी उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि विधि और व्याख्या की एकरूपता क़ायम रखनेके लिए, चाहे जैसे भी हो, सारे कागजात, एक आदमीकी नजरोंके सामने से गुजरना जरूरी है। दुर्भाग्यसे भारतीय परिस्थितियोंके अन्तर्गत किसी प्रकारका कार्य-विभाजन सम्भव नहीं है। यहां पर प्रकाशकगण, लेखकोंके परिश्रम में हाथ नहीं बटाते, जैसा कि योरोपमें होता है। मुझे स्वयं अपना क्लर्क, प्रतियां बनानेवाला, रिकार्ड रखनेवाला, प्रायः स्वयं अपना मुद्रक तथा प्रकाशक बनना पड़ता है और कभी-कभी तो धन भी मुझे ही खर्च करना पड़ता है। मुझे सान्त्वना केवल इस बातकी है कि मेरे बहुतसे भाई—विद्यार्थी इस समय उन्हीं कठिनाइयोंका सामना करते हुए, मेरी तरह संघर्ष कर रहे हैं और यही एक तरीक़ा है जिससे हम सब एक दूसरेकी सहायता कर सकते हैं। मैं आपका ध्यान इन सब बातोंकी ओर इसलिए आकर्षित कर रहा हूं कि हम लोग उन छितरे हुए प्रयासों तथा साधनोंके बीच, जो देश भरमें, विशेष रूपसे महाराष्ट्रके बाहर, इस राष्ट्रीय कार्यमें लगे हुए हैं यथासम्भव एकीकरण प्राप्त कर सकें।

भारत एक महाद्वीप है जिसमें ऐसी अनेक भाषाएं हैं जिन सबके पास थोड़ी बहुत प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियां हैं। इस समय हमको प्रत्येक जातिके प्रतिनिधि विद्वानोंकी आवश्यकता है, जो उसकी (जातिकी) अपनी भाषा में काम करें और एक सामान्य माध्यमके जरिये अपने परिणामोंको प्रकाशित करायें। उच्चतर विचार तथा विचारोंके लेनदेनके लिए, वह माध्यम अभी काफ़ी लम्बे अरसे तक अंग्रेजी ही रहेगा। मैं केवल अपनी पहलेवाली पुस्तकों को ही अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित करनेके लिए अत्यधिक लालायित नहीं हूं, वरन् पूना में « पेशवा के बहुत बड़े दफ्तर» को लेकर चार वर्ष तक काम करनेके बीचमें प्राप्त होनेवाले अपने अमूल्य अनुभवको भी

ग्रंथ जोका बाना पहनानेके लिए व्यग्र हूं, ताकि वह मराठी* न जानने वाले पाठकों को प्राप्य हो सकें। प्रायः ऐसी परम्पराएं, छोटी-छोटी कहानियां, जनश्रुतियां, रिपोर्ट, कविताएं और बन्दीजनोंके गीत होते हैं जिनमें से हम जो कुछ ले सकते हैं, ले लेते हैं। पर अतीतकी घटनाओंकी शुद्ध व्याख्या करनेमें जो भी कठोर सत्य तथा मानवीय दोष शामिल हैं, उनका ध्यान हमको सदैव रखना चाहिए। इसी ढंगसे हम सब एक दूसरेकी सहायता कर सकते हैं और एक सामान्य उद्देश्यको लेकर अपने परिश्रमोंके बीच उचित मात्रा में सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

१. राष्ट्रीय इतिहासको प्रोत्साहन देनेवाली प्रवृत्ति—राष्ट्रके सम्मुख-कार्य.

इस विषय पर कहते हुए, मैं उस प्रवृत्तिकी व्याख्या करना चाहता हूं जिसके अनुसार, मेरे विचारसे, राष्ट्रीय इतिहास का अवलोकन किया जाना चाहिए। विदेशी लेखक प्रायः अप्रामाणिक,अविचार-पूर्ण निर्णयोंसे प्रभावित हो जाते हैं। एक इतिहासकार की उदासीनता की भी अपनी सीमाएं होती हैं। उसे अनिवार्य रूपसे इस बातका स्मरण रखना चाहिए कि वह अपने ही लोगोंके लिए लिख रहा है। वह उनके ज्ञानकी उन्नति, वैभव और हितकी इच्छा रखता है। वह जानता है कि राष्ट्रीय दोषों को ठीक करनेके लिए उसे उनकी ओर सहारेसे संकेत करना चाहिए, और सदा के लिए उन्हें उदास बना देनेके वास्ते उनका (दोषोंका) वर्णन कठोरता तथा बिना सहानुभूतिके नहीं करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह उनकी अच्छी बातोंके सम्बन्धमें सुझाव दे—इसलिए नहीं कि वे घमंडी अथवा गर्वीले हो जायं, वरन् इसलिए कि उन्हें अधिक महान् एवं श्रेष्ठ प्रयासोंके लिए प्रोत्साहन मिले। इतिहासकार वास्तवमें राष्ट्रके लिए वैसा ही है जैसा बच्चोंके लिए पिता। पारितोषिक और दंड दोनोंमें ही पिता के हृदय में सदैव बच्चोंके हितका ही ध्यान रहता है। यही कारण है कि सभी देशोंमें राष्ट्रीय इतिहास जनता के किसी व्यक्ति द्वारा ही लिखे गये हैं। निश्चय ही, हमें यह जान लेना चाहिए कि दूसरोंको हमारे लिए क्या कहना है; पर सहानुभूतिपूर्ण प्रवृत्तिका अस्तित्व बराबर बना रहना चाहिए। क्योंकि दुनिया में न तो कोई इतना पूर्ण और निर्दोष

* मेरा यह स्वप्न अब मेरी «मराठों का नवीन इतिहास» पुस्तकके प्रकाशनसे पूरा हो चुका है।

सचमुच एक मर्मज्ञ विद्वान् है, पुराने तथ्योंमें कोई ऐसी चीजें दिखायी पड़ती हैं जो पहले नहीं देखी गयी हैं। बड़े लेखकों ने इतिहासके इस रूप पर हमेशा जोर दिया है।

अभी तक मैंने आप लोगोंको समझाया कि दक्षिण और पश्चिममें हम लोग किस प्रकार व्यस्त हैं; अब हम उत्तर और पूर्व की सहायता चाहते हैं। मैंने सुना है कि पूरे उत्तरी भारतमें फारसी कागजोंके ढेरके ढेर हैं, जो तमाम बड़े-बड़े नगरों, संस्थाओं और व्यक्तिगत परिवारोंके पास पड़े हुए हैं; और यदि महाराष्ट्रकी तरह कार्यकर्ताओंका झुंड वहां पर भी जगह-जगह जाकर कागजोंको ढूंढनेका प्रयास करता तो न जाने कितने कागज और मिल जाते। यदि ये फ़ारसी कागजात ढंगसे रख दिये जायं और प्रकाशित कर दिये जायं, तो उनसे उत्तरी भारतकी जातियों तथा उनके कारनामोंकी एक नई जीवन-वृत्ति प्राप्त हो जायगी, और मराठी, अंग्रेजी तथा दूसरी भाषाओंके स्रोतोंसे जो सामग्री पहले मिल चुकी है उसकी अशुद्धियोंको दूर किया जा सकेगा, उसकी कमियोंको पूरा किया जा सकेगा। वास्तवमें हमें प्रत्येक भाषा में प्रतिनिधि कार्यकर्त्ता मिलने चाहिए, और प्राप्य साधनोंसे अपनी निजी कहानीके निर्माण करनेका काम उसके भरोसे पर छोड़ दिया जाना चाहिए। इस तरह, हम प्रत्येक परिवार, जाति या सम्प्रदायके उसके अपने विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किये हुए समस्त ऐतिहासिक अतीतको सर्वोत्कृष्ट, नवीनतम ढंगसे, एक साथ ही, प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार अलग-अलग योगदान करनेसे अन्तमें भारतका एक समझने योग्य संयुक्त एवं प्रमाणित इतिहास तैयार हो जायगा, पूरा का पूरा मौलिक साधनों से। हमको अब यही करना* है।

अंग्रेजी रिकार्डोंके भी ढेरके ढेर पड़े हैं, जिनका अध्ययन हम भारतीयोंको अपने दृष्टिकोणसे करना चाहिए। ईस्ट इंडिया कम्पनीके रिकार्ड कई खंडोंमें छापे जा चुके हैं और सचमुच मूल्यवान् हैं; परन्तु उनसे हमको उस प्रकारकी सूचना नहीं मिलती जो हमारे अपने इतिहासके लिए आवश्यक है। नई दिल्ली के इम्पीरियल रिकार्ड्स् (Imperial Records) और कई प्रान्तोंके सरकारी कार्यालयोंके रिकार्ड, अभी यों ही पड़े हैं। भारतीय विद्वानोंके हाथों उनका अनुसन्धान होना अभी

* भारतकी वर्तमान बदलती हुई राजनीतिमें भारतीय राष्ट्र का इतिहास लिखनेके लिए इस प्रकार की योजना पहले ही आरम्भ हो चुकी है। महाराष्ट्र के तमाम परिवारों में अपने निजी इतिहास प्रकाशित कर लिये है।

बाक़ी हैं। जब इनके ऊपर सावधानीसे काम किया जायगा तब फ़ारसी और मराठी रिकार्डोंको उनके साथ मिलाकर एक ऐसी कहानी तैयार हो जायगी जो सबको मान्य होगी।

तत्काल अभी हमको जिस चीज़की सबसे ज्यादा ज़रूरत है वह है—पूरे पेशवा-कालके लिए, विशेष रूपसे १७०७ से लेकर १७७२ ई० तक के «कैलेंडर ऑफ़ परशियन करेस्पांडेंस» (Calendar of Persian Correspondence) के छपे हुए खंडोंकी तरहके रिकार्ड; क्योंकि इस युगमें मराठोंका प्रभाव अपनी उच्चतम सीमा तक फैल चुका था। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि फ़ारसीके ये कैलेंडर अंग्रेज़ीमें मिलना सुलभ हो गया है। मैं जानता हूं कि यदि मराठोंके कुछ सबसे महत्वपूर्ण काग़ज़ात अंग्रेज़ीमें प्रकाशित कर दिये जांय तो उन विद्यार्थियोंके लिए, जो मराठे नहीं हैं, वह समानरूपसे एक बड़ा वरदान होगा। इस तरहसे भारतके विचार और भाषा की दो मुख्य धाराओंके बीच पारस्परिक लेन-देन सम्भव हो सकता है। परन्तु मराठी काग़ज़ोंका अंग्रेज़ीमें अनुवाद करना क़रीब-क़रीब असाध्य है, क्योंकि अब तक उसकी लगभग ३०० किताबें तो छप ही चुकी हैं, जिनके बारेमें मैं पहले ही कह चुका हूं। अभी हालमें ही कुछ विश्वविद्यालयोंने बी० ए० से ऊपर वाली कक्षाओंमें भारतीय इतिहासको अध्ययनका एक विषय बनाया है; यदि उन्होंने बहुत पहले यह काम शुरू कर लिया होता, तो इस समय तक निश्चय ही परिणाम अधिक उत्साहप्रद होते। इस प्रकार आप देखेंगे कि यदि हमारे राष्ट्रीय इतिहासका निर्माण निश्चित एवं वैज्ञानिक आधारों पर होना है, तो विचार और वाद-विवाद के लेन-देन की कितनी बड़ी आवश्यकता है।

परन्तु इस प्रकारके राष्ट्रीय इतिहासको पूर्ण तथा सर्व-पक्षीय बनानेके लिए उसमें सभी विषयोंका हाल अनिवार्य रूपसे होना चाहिए। राजनीति तो उनमें से केवल एक विषय है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि वह उसका एक आवश्यक अंग है। मराठी काग़ज़ोंमें सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सैनिक, व्यावसायिक, न्याय-सम्बन्धी तथा अन्य विषयोंके ऊपर उपयोगी सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है; किन्तु जब तक राजनीतिक क्रियाओंकी मुख्य धाराएं निर्धारित नहीं कर दी जातीं तब तक इन अन्य विषयोंके ऊपर सन्तोषजनक ढंगसे विचार नहीं किया जा सकता। महाराष्ट्र में अत्यधिक वाद-विवाद पहले ही हो चुका है; और कुछ प्रकाशित पुस्तकोंमें, विशेष रूपसे पूना के बी० आई० मंडलकी पुस्तकोंमें, पूरे भारतसे सम्बन्ध रखनेवाले तमाम

समाचार मिलते हैं। निश्चय ही इन पुस्तकोंका अंग्रेजीमें अनुवाद किया जायगा, ताकि महाराष्ट्रने जो कुछ देनेका प्रयास किया है, उसमें भारतीय महाद्वीपके दूसरे भाग, अपनी तरफसे कुछ जोड़ने या सुधार करनेमें समर्थ हो सकें। एक बार धूलियाके एक सज्जनने प्राचीन न्यायसम्बन्धी कागजो तथा निर्णयोंका अध्ययन किया और उनकी सहायता से मराठोंके कानूनी शासनके ऊपर कुछ लाभदायक लेख छापे। कलकत्ता-विश्वविद्यालयके तत्वावधानमें प्रकाशित डॉ० एस० एन० सेन की «मराठोंकी शासन-सम्बन्धी तथा सैनिक प्रणालियां», दूसरी दिशा में मार्ग-दर्शक (Pioneer) का काम करती हैं। यद्यपि उनमें वर्णित विषय अभी तक अप्रौढ (crude) अवस्था में हैं, और बहुत सी ऐसी जरूरी बातोंमें उन्नति करनेकी आवश्यकता है, जिनके ऊपर नये अनुसन्धान आये दिन प्रकाश डाल रहे हैं, तथापि यह प्रयास हर तरहसे प्रशंसनीय है। भारतीय विश्वविद्यालयोंमें विद्यार्थियोंने विभिन्न विषयोंके ऊपर थीसिसें (Theses) तैयार की है, जो राष्ट्रीय इतिहासके लिए बड़ी लाभदायक है।

इतिहास उन महान् योद्धाओं और राजनीतिज्ञोंके कारनामोंका वर्णन करता है, जो अतीतके महत्वपूर्ण व्यक्ति रहे हैं, और यही उसका मुख्य उद्देश्य होता है। परन्तु छोटे-छोटे सैकड़ों और हजारों ऐसे व्यक्तियोंकी इच्छित सेवाओं एवं बलिदानोंके बिना, जिनमें थोड़ी बहुत योग्यता थी, और जो मुख्य धारा को अपना योगदान बराबर करते रहते थे, उस तरहका कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता था। ग्रांट डफ और उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भिक भागके कुछ दूसरे लेखकोंने मराठा-इतिहासमें प्रमुख भाग लेनेवाले कुछ व्यक्तियों तथा परिवारोंका यों ही थोड़ा सा जिक्र कर दिया है; किन्तु जब मैंने उन कागजोंके ढेरके ढेर, जिनका मिलना अब सुलभ है, जांचने शुरू किये, तब मुझे पता चला कि वे उस कालके तमाम बड़े और अच्छे नाम हैं जिनके कार्योंका वर्णन इतिहासको अनिवार्य रूपसे करना चाहिए। इस प्रकार मैं पाठकोंके सामने सभी जातियोंके सौ से अधिक परिवारोंका नया वर्णन प्रस्तुत करनेमें समर्थ हुआ हूं। उस वर्णनमें मैंने उनकी वंशावलियां, तिथियां और अन्य छोटी-छोटी बातें भी दे दी हैं, ताकि जब किसी कागजमें नये नाम मिलें, तो हम उन्हें तुरन्त पहचान सकें। इसके अतिरिक्त मैंने उन परिवारों और उनके सदस्योंके सभी व्यक्तिगत तथा सामाजिक विवरणोंको एकत्र करनेकी चेष्टा की है, ताकि हम उन दिनोंके, जब कि महाराष्ट्र व्यावहारिक रूपमें «स्वराज्य» का उपभोग कर रहा था, अपने सामाजिक जीवन और उसकी गतियों के सम्बन्धमें कुछ शिक्षाप्रद निष्कर्ष निकाल लेनेमें समर्थ हो सकें। यदि इन सब सो

परिवारों और उनकी वंशावलियोंका सावधानीके साथ परीक्षण किया जाय, तो उनमें से बहुत-सी लाभदायक बातें निकल आयेंगी। जैसे उदाहरणके लिए उस समय के पुरुषोंका दैनिक जीवन सामान्य रूपसे किस तरह का था, जनसंख्या बढ़ने या घटनेके लिए दशाएं कहां तक अनुकूल थी; किस प्रकारकी शिक्षा प्रचलित थी, और राष्ट्रके नैतिक एवं शारीरिक हितके ऊपर उसका प्रभाव किस तरहका पड़ता था। केवल यही एक तरीका है जिससे हमारे राष्ट्रीय इतिहासका निर्माण धीरे-धीरे हो सकता है।

आगेके व्याख्यानोंमें, मैं हालमें होने वाले अनुसन्धान कार्यके द्वारा स्थापित की गयी कुछ मुख्य बातोंकी विवेचना करना आरम्भ करूंगा, ताकि आप लोगोंको इस बातका आभास मिल सके कि इस विस्तृत भारतीय महाद्वीपके एक सर्वमान्य राष्ट्रीय इतिहास की रचना करनेमें समर्थ होनेके पूर्व हमें अभी कितना अधिक काम करना बाक़ी है।

३

हिन्दू-समाज के सम्बन्ध में शिवाजी की धारणा

१. शिवाजी अपने पिता से संकेत प्राप्त करते हैं.

महाराष्ट्रकी परम्परा के अनुसार बहुत पहले ही यह माना जा चुका है कि शिवाजी का जन्म चित्तौड़के सूर्यवंशी सिसोदिया कुल में हुआ था। बीजापुर ज़िले में मुधौल (Mudhol) नामक स्थानके स्वर्गीय राजा, जिनका कुल-नाम घोरपदे* था, के पास फारसीकी अनेक सनदें थीं। हालमें उन सनदोंकी प्रतिलिपियां प्रकाशित हो जानेके कारण उपर्युक्त धारणा और पुष्ट हो गयी है। मुधोलके इस परिवार और सतारा के छत्रपतियोंके पूर्वपुरुष एक ही थे, जिनका नाम था सज्जनसिंह। वे चित्तौड़के राणा लक्ष्मणसिंहके पोते थे। पठान बादशाह अलाउद्दीन खिलजीके आक्रमण ने चित्तौड़में जो भीषण विप्लव मचा दिया था, उसीके बाद सज्जनसिंह १३२० ई० के लगभग अपना घरबार छोड़ कर दक्षिण चले गये थे। कहा जाता है कि सज्जन-सिंह, उनके भाई क्षेमसिंह, और उन दोनोंके उत्तराधिकारियोंने बहमनी राज्यमें गवर्नरों के पद पर काम किया था और समय-समय पर उनसे तमाम जागीरें पाई थीं जिनके मौलिक लेख-प्रमाण (दस्तावेज) अब अध्ययनों के लिए प्राप्त हैं। १४७० ई० के लगभग करणसिंह और शुभकृष्ण नामके दो भाइयोंने, जो सज्जनसिंहके वंशज थे, अपनी जायदाद (भूमि) का बंटवारा कर लिया; पहले अर्थात् बड़ेको मुधोलका दक्षिणी †

* इन फ़रमानोंकी प्रामाणिकता के ऊपर गम्भीरता के साथ सन्देह किया जाता है। वे जाली कहे जाते हैं।

† डॉ० बालकृष्ण द्वारा लिखित « शिवाजी महान् » खंड १, भाग १।

भाग मिला, और छोटेको उत्तरी भाग, जो दौलताबाद और पूना के बीचमें स्थित था। खेलना (Khelna) या विशालगढ़ (एक दुर्ग विशेष), जो उस समय बहमनी बादशाहोंके प्रसिद्ध मंत्री महमूद गवां के अधिकारमें था, की दीवारोंको «घोरपद» (एक प्रकारकी छिपकली) की सहायता से सफलतापूर्वक लांघ जानेके कारण मुधोल शाखा का कुल नाम घोरपदे पड़ गया था। शिवाजी के बाबा, मालोजी भोंसलेका, छोटे भाई शुभकृष्णके खानदानमें पांचवां नम्बर था। इस तरह यह जान पड़ता है कि सज्जनसिंह और मालोजी के बीचके तीन सौ वर्षोंमें (१३२०-१६२०) लगभग बारह पीढ़ियां हुईं। एक बार अलग हो जानेके बाद, भोंसले और घोरपदे अपनी-अपनी जीवन वृत्तियोंमें अपने-अपने भाग्यका अनुसरण करते रहे, और प्रायः एक दूसरेके प्रति घोर शत्रुता दिखाते रहे। हम जानते हैं कि जिंजीके निकट शाहजी भोंसलेको बन्दी बनानेमें बाजीघोरपदे ने किस प्रकार प्रमुख भाग लिया था और किस तरह बाद को शिवाजी ने बदला लेनेके अभिप्रायसे उसके ऊपर आक्रमण किया था और उसे मार डाला था। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि भोंसलें और घोरपदेकी तरह, दक्षिणके अनेक मराठा परिवार जैसे पवार (Pawars), जाधव, मोरे (Moreys) आदि भी अपनेको राजपूतोंका वंशज बताते हैं।

शिवाजी के पहलेके ढेरके ढेर मराठी और फ़ारसीके पुराने काग़ज़ात, जो हालमें प्रकाशित किये गयेहैं, शिवाजी और उनके पिता शाहजी तथा मालोजी की प्रारम्भिक क्रियाओं के ऊपर अत्यधिक प्रकाश डालते हैं। शाहजीने अहमदनगरके बादशाहोंके योग्य मंत्री मलिक अम्बरकी अधीनता में रहकर विशेष योग्यता तथा बहादुरीसे काम किया। छापामार (guerilla) युद्धकला से लाभ उठाकर, जो पश्चिमी दक्षिणके पहाड़ी प्रदेशोंके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है और जिसका प्रयोग बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगरकी सेवा में कार्य करनेवाले मराठा सर्दार बड़ी योग्यता से कर रहे थे, मलिक अम्बरने जहांगीर के दक्षिणमें अपना राज्यविस्तार के लिए लगातार किये जाने वाले प्रयासोंका पचीस वर्ष तक सफलतापूर्वक अवरोध किया।

अनेक विद्वानोंको इन घटनाओंमें एक विलक्षण तथ्य दिखाई पड़ा। वह यह है कि जिस प्रकार शिवाजी औरंगज़ेब ने अपने बीचमें, सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धका इतिहास बनाया, कुछ हद तक उसी तरह उनके पहले उनके पिताओंने भी उसी शताब्दीके प्रारम्भिक भागमें इतिहास का निर्माण किया। शाहजी (१५९४-१६६४) और शाहजहां (१५९२-१६६६) ने, जो आयु और व्यवहार (activity) दोनोंमें सम-

दिया था। उनका प्रारम्भिक जीवन साहसिक कार्यों तथा धृष्टता से भरा हुआ था। चूंकि जन्म लेनेके बादसे शिवाजी अपने पिता से व्यावहारिक रूपमें अलग ही रहे, इसलिए उन्होंने जिन्दगीकी तमाम जरूरी बातोंकी तालीम अपनी मा और अभिभावक दादाजी कोंडदेव (Kondadeo) से प्राप्त की। उनकी अपूर्व जीवन वृत्तिका प्रारम्भ जनता की नजरोंसे दूर पहाड़ी किलोंके बीच में हुआ, जहां उन्होंने स्थानीय जमींदारों से दोस्ती की, पुराने किलोंकी मरम्मत कराई, बहुतसे पुराने किलों पर अधिकार जमाया और नये किलोंका निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त पिता की जागीर* के उन सभी लोगोंको, जिन्होने उनकी (शिवाजी) सत्ता का विरोध किया, अपना आधिपत्य स्वीकार करनेके लिए बाध्य किया। पहली महत्त्वपूर्ण घटना, जिसने उन्हें एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बना दिया, थी जावली के मोरे लोगोंपर १६५६ ई० में उनकी विजय। तीन वर्ष बाद, उन्होंने मुख्य रूपसे, सतर्क युद्धकौशल एवं चतुर कूटनीतिके द्वारा बीजापुरके शक्तिशाली सेनापति अफजलखां के विरुद्ध एक देदीप्यमान सफलता प्राप्त की, जिसके फलस्वरूप न केवल उनके सारे प्रतिद्वन्द्वियोंके हृदय भयसे कांप उठे, बल्कि एक मेधावी (gifted) और निर्भय नायकके रूपमें, जो सभी कुछ करने में *समर्थ था, उनकी प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी। अगले चार वर्षोंमें उन्होंने औरंगजेब के* सेनापति जसवन्तसिंह और शाइस्ताखां द्वारा अपने ऊपर (शिवाजी) विजय पानेके लिए किये जाने वाले प्रयासोंको विफल कर दिया, प्रसिद्ध मिर्जा राजा जयसिंह के साथ मित्रतापूर्ण समझौता कर लिया, और उसकी मंत्रणा के अनुसार १६६६ में आगरा जाकर सम्राट् के दर्बारके दर्शन किये। सर्वशक्तिमान् सम्राट् को खुल्लम-खुल्ला *ललकारना और बन्दीगृहसे चमत्कारी ढंगसे भाग निकलना—ये दो बातें ऐसी थीं* जिनके कारण वे तुरन्त भारतवर्ष भरमें मुग़ल-साम्राज्यके एक दुर्निवार (irresistible) शत्रुके रूपमें विख्यात हो गये, और यह समझा जाने लगा कि हिन्दू राष्ट्र की मुक्तिके लिए जरूर ही उन्हें ईश्वर की ओरसे प्रेरणा मिली है। इसके बाद वे बिना किसी रुकावटके नये-नये प्रदेश जीतते रहे और १६७४ ई० में रस्मी तौर पर एक स्वतन्त्र शासकके रूपमें राजमुकुट धारण किया और एक क्षत्रिय राजा के समस्त परम्परागत सम्मानको प्राप्त किया। अपने जीवनके अगले छः वर्षोंमें शिवाजी ने

* उनके महत्त्वपूर्ण जीवनके प्रारम्भकी पहली निश्चित तिथि १ अगस्त, १६४४ है जब दादाजी ने पश्चिमी प्रान्तकी राजधानी शिपद पर अधिकार किया था; और शिवाजी का पैतृक स्वराज्य १६५३ तक पूरा हो गया था।

अपने राज्यका विस्तार कावेरी नदीके मुहाने तक कर लिया, परन्तु १६८० ई० में युवावस्था में ही अचानक उन्हें कालका ग्रास होना पड़ा। वे अपने पीछे एक अतुल विजेता, राष्ट्रनिर्माता तथा प्रेरक मूर्ति, और हिन्दुओंके बीचमें रचनात्मक कार्य करने वाले अभूतपूर्व बुद्धिके अन्तिम व्यक्तिके रूपमें अपनी जातिके लिए एक श्रेष्ठ उत्तरदान (legacy) छोड़ गये।

यहां पर मैं यह बताना चाहता हूं कि शिवाजी की महत्ता किस बातमें है और उनका उदाहरण किस प्रकार हर कालमें मनुष्योंके नेताओंको व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करता है।

मेरी रायमें शिवाजी की महत्ता यह थी कि उन्होंने मराठा जातिकी मानसिक दशाका रूप बदल दिया, और उसको अपने असाधारण नेतृत्वके जरिये भारतकी विभिन्न जातियोंके बीच सर्वश्रेष्ठ मान प्राप्त करनेमें समर्थ बना दिया। यह सभी जानते हैं कि शिवाजी के उत्कर्षके पूर्व एक शताब्दीसे अधिक समय तक पश्चिमी पहाड़ियोंमें रहनेवाली मराठा जातियोंका जीवन कितना कलहकारी, उपद्रवी और अराजकता से पूर्ण रहा था। वे एक दूसरेको बर्बाद करनेवाले पारस्परिक झगड़ोंमें पड़ कर अपनी शक्तिको नष्ट किया करते थे और किसी सत्ता का आधिपत्य न मानते थे। उनकी जान तथा माल बिल्कुल असुरक्षित दशा में थे। शिवाजी ने स्थितिका ठीक-ठीक अन्दाज लगा लिया। पहले तो उन्होंने उनकी अराजकतापूर्ण क्रियाओंमें हृदयसे भाग लिया और थोड़े ही दिनोंमें उनके विश्वासपात्र बन गये। उसके बाद फिर उन्होंने उनकी कलहप्रिय एवं साहसी प्रवृत्ति पर पूर्णरूपसे इस प्रकार अधिकार कर लिया कि उन्होंने शंकाहीन होकर उनकी आज्ञा का पालन और अपने देशकी स्वतंत्रता की रक्षा करनेके लिए संयुक्त राष्ट्रीय प्रयास आरम्भ कर दिया। झुंड बनाकर इधर-उधर घूमने वाले अनुशासनहीन मराठे शीघ्र ही इच्छासे की हुई मैत्रीका मूल्य समझ गये और दुःख-सुख दोनोंमें अपने नेता का अनुसरण करने लगे। इस प्रकार लगभग बीस वर्ष की छोटी सी अवधिमें देश भरमें लोग मराठोंके नामका आदर करने और उनसे डरने लगे। अन्तमें शिवाजी ने रस्मी तौर पर शास्त्रोंमें बताये हुए नियमोंके अनुरूप मराठा-राज्यकी नींव डाली और बिखरे हुए, कलहकारी तत्वोंके बीच आवश्यक दृढ़ता स्थापित करके, एक अल्पकालीन परन्तु देदीप्यमान जीवनवृत्तिके पश्चात् एक अपूर्व बुद्धि वाले रचनात्मक कार्यकर्ता का जो उदाहरण छोड़ा वह अपने ढंगका अकेला ही है।

हम भारतीयोंको लड़ाई झगड़े और फूटसे उत्पन्न होनेवाले अपने वर्तमान कष्टों में, इस देदीप्यमान उदाहरणसे बहुत कुछ सीखना है। हमें आशा करनी चाहिए कि वह हमें प्रेरणा प्रदान करेगा।

३. रामदास तथा अन्य सन्तोंका प्रभाव.

चूंकि हमारे लिए यह समझना आवश्यक है कि मराठोंकी नीति क्या थी और वह समय-समय पर किस तरह बदलती रही, इसलिए हमें अनिवार्य रूपसे इतिहासका अध्ययन करना चाहिए और पुराने कागज-पत्रों तथा लेखोंसे प्राप्त प्रमाणोंकी सहायता से यह निश्चित करना चाहिए कि जब शिवाजी ने एक स्वतंत्र मराठा-राज्यकी स्थापना करनेका कार्य प्रारम्भ किया उस समय उनका मौलिक उद्देश्य क्या था। शिवाजी ने भारतकी तमाम जातियोंके सभी लोगोंके लिए एक हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेका विचार किया था अथवा उनका ध्यान महाराष्ट्रमें अपने लिए केवल एक छोटा सा राज्य बनानेकी ओर ही लगा हुआ था?—यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके ऊपर अत्यधिक मतभेद है। इसलिए प्राप्त प्रमाणों पर विचार करनेके बाद इस प्रश्न पर मैं जिस निर्णय पर पहुंच सका हूं, उसे आप लोगोंके समक्ष रख देना चाहता हूं। शिवाजी के राज्यका श्रीगणेश अपने पिता की छोटीसी «जागीर» से हुआ जिसके अन्दर आजकलके हिसाबसे करीब-करीब दो छोटे ताल्लुके अर्थात् जुन्नारसे सुपा (Supa) तक थे। शिवाजी ने, १६८० में अपनी मृत्युसे पहले, अपने राज्य को, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, मोटे तौर पर पश्चिमी सागरसे, पूर्वमें भीमा नदी तक और उत्तरमें ताप्ती से लेकर दक्षिणमें कावेरी तक फैला लिया। मैं पहले ही दिखा चुका हूं कि शिवाजी अपने को हिन्दू धर्मका नेता मानते थे; अपने धर्मकी रक्षा के ही लिए उन्होंने मुसलमानोंकी छेड़छाड़के विरुद्ध युद्ध करने प्रारम्भ किये थे। शिवाजी का उद्देश्य निश्चित करनेमें हमको उनके चारों ओरके उस वातावरणका विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिए जिसमें उनका जन्म तथा पालन-पोषण हुआ और जिसका वर्णन उन भारतीय सन्तोंकी तात्कालीन रचनाओंमें बहुतायतसे पाया जाता है, जिन्होंने राजनीतिक उपदेश धार्मिक शब्दों में दिया। इन महात्माओं ने समझ लिया था कि मुसलमानी शासन पूरे उत्तरी भारत के लिए असह्य हो रहा था; दक्षिणमें शिवाजी ने, जो अपने को हिन्दू धर्मका नेता कहते थे, पुनर्जीवन का कार्य प्रारम्भ कर लिया था। इनमेंसे अधिकांश महात्माओंने

हिन्दुस्तान भरमें दूर-दूर यात्रा की थी और विभिन्न स्थानोंके लोगोंके साथ स्वतंत्रता-पूर्वक मिलकर बातचीत की थी। इस सिलसिले में उन्होंने अपनी आंखोंसे हिन्दुओंके कष्टमय जीवनको देखा, और देखा उनके मंदिरों, अलौकिक पदार्थों एवं पवित्र स्थानों का नाश। साथ ही उन्होंने उनके साथ, अपने ढंगसे, बिना किसी हिचकके इस बातकी विवेचना की कि अपने धर्मकी रक्षा करने तथा अपने ऊपर होने वाले अत्याचारोंसे मुक्ति पानेके लिए सम्भवतः कौनसे उपाय किये जा सकते थे।

रामदास ने, जिनका जन्म शिवाजी से २० वर्ष पूर्व और मृत्यु दो वर्ष पश्चात् हुई, धार्मिक पुनर्जीवनके अभिप्रायसे अपना स्वतंत्र आन्दोलन आरम्भ किया। इसी उद्देश्यसे उन्होंने अनेक स्थानोंमें रामदासी «मठ» स्थापित किये, और अपने ढंगसे राजनैतिक नेताओंके प्रयासोंको यथासम्भव सहायता देते रहे। कहा जाता है कि रामदास ने पूरे भारतवर्षमें कुल मिलाकर लगभग ८०० «मठ» कायम किये, जिनमें से ७२ के क़रीब मठ ज्यादा मशहूर रहे हैं। भारतके सुदूर-दक्षिण तक उनके उपदेशों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सुदूर दक्षिणमें तंजोरके सूबेमें, रामदास-सम्प्रदायके अनुयायियोंकी संख्या बहुत अधिक थी, और उनके बाद २०० वर्षों तक, रामदास के इस तंजोरी वर्गके अनुयायी अपार मराठी-साहित्यका उत्पादन करते रहे। तंजोरके सूबेमें मराठी की बहुत-सी कविताएं, शब्दकोष, व्याकरण, नाटक, भाष्य और इतिहास लिखे गये। इसका मुख्य कारण यह था कि वहां के राजा स्वयं विद्वानोंके आश्रयदाता थे और उन्होंने इन रचनाओं में व्यक्तिगत रूपसे अत्यधिक भाग लिया था। इस प्रकार मराठी-साहित्यमें होनेवाली उन्नति के परिणाम तंजोरके सरस्वती-मन्दिरमें स्पष्ट रूपसे दिखायी देते हैं। आनन्द-तनय और रघुनाथ पण्डित तंजोरके सबसे प्रसिद्ध मराठी कवि थे। वे रामदास के उपदेशोंके अनुयायी माने जाते हैं। वहां उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक भागमें बृहदेश्वर (Brihadeshwar) के मन्दिरकी पत्थरकी दीवारों पर, बड़े-बड़े सुन्दर देवनागरी अक्षरोंमें एक मराठी लेख उत्कीर्ण किया गया था। उस लेखमें तंजोरके मराठा राज्यके पूरे इतिहासका वर्णन मिलता है। अब यह छोटे पत्रेकी लगभग १३० पृष्ठोंकी पुस्तक के रूपमें फिरसे लिखा गया है। इतना बड़ा ऐतिहासिक शिलालेख संसार भरमें और कहीं नहीं मिलता। शिवाजी की मृत्युके समय महाराष्ट्रमें रामदासी सम्प्रदायके अनुयायियोंकी संख्या लगभग १,२०० थी। एक विशेष प्रकारके लोगोंको इतनी बड़ी संख्या में देशके उत्थानके लिए कार्य करते हुए तथा महाराष्ट्रके भावी भाग्यको बनानेमें जनता के हृदयको प्रभावित करते हुए

देख कर याद आ जाता है कि यह सब रामदास के प्रति उत्तम निर्माण कार्यका ही परिणाम है।

रामदास की अपनी रचनाएं उत्साहपूर्ण एवं मनको प्रभावित करने वाली हैं और उनकी एक-एक उक्ति राष्ट्रीय प्रवृत्तिसे ओत-प्रोत है। उनका क्षेत्र विस्तृत है और व्यावहारिक जीवनका कोई भी अंग उनसे अछूता नहीं बचा है। वे सत्य, भक्ति तथा आत्मविश्वास जैसे गुणों की शिक्षा देती हैं। रामदास अपने लिए «समर्थ» शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे राष्ट्रके सर्वांगीण पुनर्जीवन (regeneration) तथा लोगों के शारीरिक एवं नैतिक साधनोंकी सुरक्षा के पक्षपाती थे। लोगोंने मठोंमें इकट्ठा होना आरम्भ किया, जहां उनके ऊपर रामदास के उन उपदेशोंका गहरा प्रभाव पड़ा जिनकी व्याख्या उनकी श्रेष्ठ रचना «दास-बोध» में की गयी है। (दास-बोध = एक दास को मंत्रणा) ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दास बोध ने लोगोंको शिवाजी के राष्ट्रीय कार्यमें हाथ बटाने के लिए अग्रसर किया। चूंकि उन्हें दिन प्रति दिन सफलता प्राप्त होने लगी थी इसलिए उन्होंने शिवाजी की गतियों (moves) में निहित सिद्धान्तों को शीघ्र ही अपना लिया। राजनैतिक प्रचारके दृष्टिकोणसे इन मठोंको कौनसा विशेष काम सौंपा गया था, उसके कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते; बल्कि इस सम्बन्धमें तो यह प्रश्न उठता है कि रामदास की शिक्षाओंने राष्ट्रीय उत्थानके कार्यमें सचमुच कितनी मदद की। प्रत्येक «मठ» में राम और हनुमान् का एक-एक मंदिर होता था। हमारा अनुमान है कि हर एक मंदिरके लगाव में कई अखाड़े होते थे। अतएव इन «मठों» का मुख्य कार्य लोगोंकी शारीरिक एवं नैतिक शक्तिका निर्माण और संरक्षण करना ही रहा होगा। जैसे-जैसे «दास-बोध» रोज-रोज बढ़ता गया, वैसे-वैसे इन «मठों» में लोग उसे पढ़ने और उसका अध्ययन करने लगे और समाजके ऊपर सामान्य रूपसे उसका बड़ा गहरा असर पड़ने लगा। रामदास इस बात पर जोर देते थे कि जिस तरह भी सम्भव हो, राष्ट्रकी शक्तिको बढ़ानेके लिए यह आवश्यक है कि हर तरफ छोटी बड़ी संस्थाएं क़ायम की जायं। «मठों» में धार्मिक उपदेश सुनने के लिए बड़ी-बड़ी सभाएं जुटा करती थीं, और हम जानते हैं कि शिवाजी के प्रमुख साथियोंमें से अधिकांशने रामदासी सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया और उनकी शिक्षाओंका अनुसरण करने लगे। इस प्रकार स्वराज्य-आन्दोलनके सम्बन्धमें यह समझा जाता है कि शिवाजी ने राष्ट्रकी शारीरिक और रामदास ने नैतिक-शक्ति का प्रतिनिधित्व किया। शिवाजी ने प्राचीन विजयनगरके परम्परागत नीति-कौशल,

युद्धकला, दर्शन और कलाओंको अपना लिया था और उनको अपने निजी नवीन आदर्शोंके साथ मिला लिया था; रामदास ने अपने अनुभव और यात्रा के जरिये भारत के बड़े-बड़े महात्मा—नानक, कबीर, चैतन्य और तुकाराम आदि की शिक्षाओंके सिद्धान्तोंको ग्रहण कर लिया, ताकि वे उन्हें अपने राष्ट्रको सिखा सकें। दोनोके बीच केवल एक अन्तर था—यह यह कि रामदास बहुत ही अधिक व्यावहारिक, सरल प्रकृतिवाले थे। वह स्पष्ट रूपसे बात करनेवाले तथा समझदार थे। उनका एक-एक शब्द जोश और ताक़तसे भरा हुआ है। शिवाजी प्रारम्भसे ही सब जातियोंके लोगोंके साथ खुलकर मिलते जुलते थे, और उनके हृदय में रामदास तथा दूसरे महात्माओं और विद्वानोंके प्रति, जो संसारका अनुभव प्राप्त कर चुके थे, विशेष श्रद्धा थी। इसमें सन्देह नहीं कि दोनोंके उद्देश्य ऊंचे थे, परन्तु मनमें यह शंका पैदा होना स्वाभाविक ही है कि उन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए उन्होंने जान बूझकर कहां तक सहयोग किया। शिवाजी की माता और पिता पहले से ही मुसलमानों की अधीनता में रहते रहते घबरा उठे थे, और अपने धर्म तथा देशकी रक्षा के लिए निरन्तर उपाय सोचा करते थे। शिवाजी को अपनी राजनीतिक गतियों अथवा आदर्शोंमें रामदास से प्रत्यक्ष प्रेरणा मिली, इस बातको सिद्ध करने के लिए कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

४. राज्याभिषेक संस्कार तथा उसका उद्देश्य.

दूसरी बात यह है कि जब हम उनकी देदीप्यमान जीवनवृत्तिके लगभग पैंतीस वर्षोंके बीच होनेवाले उनके युद्धों और चढ़ाइयों, योजनाओं और चेष्टाओं, तथा शब्दों और व्यवस्थाओंका सूक्ष्म परीक्षण करते हैं तो इस बात का तनिक भी आभास नहीं मिलता कि उन्होंने अपनी दृष्टि केवल महाराष्ट्र अथवा दक्षिण तक सीमित कर रखी थी। वह यह नहीं जानते थे कि असामयिक मृत्युके कारण उनका जीवन इतना छोटा हो जायगा। यदि उनके भाग्यमें अपने विपक्षी औरंगजेब की तरह बहुत बूढ़ा होना नहीं बदा था, तब भी वे कमसे कम बीस वर्ष और आसानी से जिन्दा रह सकते थे। शिवाजी की नींवें (foundations) इतनी चौड़ी थीं कि उनके ऊपर एक अखिल-भारतीय भवन खड़ा किया जा सकता था। उनके समस्त उपाय निश्चित रूपसे इस बातकी ओर लक्ष्य करते थे। उन्होंने ठीक उत्तर वैदिक कालीन क्षत्रिय-प्रथा के अनुसार सावधानी के साथ, बनारसके प्रसिद्ध भट्ट परिवारके एक पंडित के निर्देशन में अपना राज्याभिषेक

संस्कार बड़ी धूमधामके साथ सम्पन्न करवाया और उन सभी रीतियों तथा शान-शौकत का अनुसरण किया जो अशोक, चंद्रगुप्त अथवा हर्षवर्धन के समयमें पाई जाती थी। शिवाजी के पूर्वज चित्तोड़ के क्षत्रिय वंशके थे, जो अपने को श्रीरामचन्द्र का वंशज मानते थे। शिवाजी ने «क्षत्रिय-कुलावतंस» «सिंहासनाधीश्वर», छत्रपति-जैसी महत्त्वपूर्ण उपाधियां धारण कीं, स्पष्ट रूपसे यह प्रतिज्ञा की कि गौ और ब्राह्मण की रक्षा करना उनका मुख्य लक्ष्य है। अपनी सरकारी मुद्रा पर वह आदर्श-वाक्य अंकित करवाया जिसकी रचना में वाक्पटुता के साथ-साथ पूर्णता की झलक मिलती है; विचार-विमर्श के बाद दर्बारमें प्रयोग किये जाने वाले फ़ारसी पदों (terms) के स्थान पर संस्कृतके पर्यायवाची पदोंको ग्रहण किया; मराठोंको दर्बारकी भाषा के रूप में स्वीकार किया; प्राचीन «शास्त्रों» में आठ मंत्रियों तथा उनके कर्तव्योंके विषयमें दिये गये आदेशोंको व्यवहार रूपमें प्रचलित किया। खुले तौर पर हिन्दुओंकी चार जातियोंकी प्रणालीको स्वीकार किया और अपने लिए क्षत्रिय होने का दावा किया। ये सब बातें स्पष्ट रूपसे उनके सर्व-हिन्दू-आदर्श की ओर संकेत करती हैं, जिसका दक्षिण तक सीमित छोटे से मराठा राज्यके अन्तर्गत कोई स्थान न होता। उस दशा में तो वह बहमनी राज्यकी शाखाओं में से किसी एक की तरह का छोटा सा राज्य बनता।

तीसरी बात यह है कि, शिवाजी ने जिस विधि से एक छोटे से स्वतन्त्र राज्य की स्थापना एवं विस्तार किया, वह स्वयं ही उनके भावी उद्देश्यों का संकेत (clue) प्रदान करती है। जैसे «सरदेशमुखी» और «चौथाई» दो चीज़ोंके लिए अपना अधिकार जताना। इन दोनोंके बारे में मैं ही कुछ देर में बताऊंगा। १६४८ में उन्होंने सम्राट् शाहजहां से सरदेशमुखी मांगी, जिसके ऊपर मराठा जातिके सरदेशमुख अथवा प्रधान प्रादेशिक पदाधिकारी के पदपर होनेके नाते उनका पैतृक अधिकार था। उत्तरी कोंकण पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने १६६० ई० के लगभग चौथाई को पुनर्जीवित किया। कोंकण में रामनगर के राजा लोग आसपास के ज़िलोंसे यह कर वसूल किया करते थे। प्रारम्भ से ही, उन्होंने चतुराई के साथ ये दो सुविधाजनक हथियार गढ़ डाले, जो आगे चलकर मराठों को पूरे भारतीय महाद्वीप में एक हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करने के लिए उपयोगी साधन बन सकते थे।

५. अन्य हिन्दू राजाओं से मेल करना.

चौथी बात यह है कि जब कभी सम्राट् या अन्य मुसलमान बादशाहोंसे

शिवाजी से लड़ाई होती तो वह बड़ी सावधानीके साथ अपने विपक्षियोंको मग्न कर लेते थे। आमतौर पर वह सम्राट्के हिन्दू-सेनापतियोंसे कभी न लड़ते थे। उन्होंने जसवन्तसिंह से मित्रता करनेकी चेष्टा की और जयसिंह को खुल्लम-खुल्ला अपनी ओर मिला लिया। वे दोनों ही उच्च कुलके राजपूत थे, और शिवाजी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। बाबू जगन्नाथदास ने «नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका» में फ़ारसीको शेरमें लिखा हुआ एक पत्र प्रकाशित किया है जो जयसिंह के नाम लिखा हुआ शिवाजी का पत्र माना जाता है। उसका तात्पर्य है—स्पष्ट और जोरदार शब्दों में शिवाजी के उद्देश्योंकी चर्चा करना। यदि पत्रकी प्रामाणिकता के विषयमें सन्देह किया जाय तो भी हमें यह मानना पड़ेगा कि काव्य-रचना के सहारे हमें इस बातका सच्चा आभास मिल जाता है कि शिवाजी ने सम्राट्का विरोध करके जो संकट मोल लिया था उसके विषयमें उस समय सामान्य रूपसे प्रचलित विचार क्या थे। वह हमारा ध्यान उस समयकी वास्तविक परिस्थितिकी ओर भी आकर्षित करता है। शिवाजी अपने पत्रमें लिखते हैं—"ओ महाराज, यद्यपि आप एक बड़े क्षत्रिय हैं तथापि अपनी शक्तिका प्रयोग बाबर के वंशको वृद्धिके लिए करते आये हैं। और रक्त-वर्ण वाले मुसलमानोंको विजयी बनानेके लिए हिन्दुओंका खून बहा रहे हैं। क्या आप इस बातको नहीं समझ पा रहे हैं कि इस तरहसे आप पूरे जगत्के सामने अपनी कीर्तिको कलंकित कर रहे हैं? यदि आप मुझे जीतनेके लिए आये हैं तो मैं आपकी राहमें अपना सिर बिछा देनेके लिए तैयार हूं; पर चूंकि आप सम्राट्के प्रतिनिधि होकर आये हैं, इसलिए मैं इस बातका निश्चय नहीं कर पा रहा हूं कि आपके साथ कैसा व्यवहार करूं। यदि आप हिन्दू धर्मकी ओरसे लड़ें तो मैं आपके साथ सहयोग करने और आपकी सहायता करनेके लिए तैयार हूं। आप वीर एवं पराक्रमी हैं। एक शक्तिशाली हिन्दू राजा की हैसियतसे, आपके लिए सम्राट्के विरुद्ध नेतृत्व ग्रहण करना ही शोभा देता है। आइये हम लोग चलें, और दिल्लीके ऊपर विजय प्राप्त कर लें। हमारा मूल्यवान् रक्त अपने प्राचीन धर्मकी रक्षा और अपने प्यारे पूर्वजोंको सन्तुष्ट करनेके लिए बहे। यदि दो दिल मिल सकें तो वे कठोरसे कठोर अवरोधको तोड़ कर फेंक देंगे। मुझे आपसे किसी प्रकारकी शत्रुता नहीं है और मैं आपके साथ लड़नेका इच्छुक नहीं हूं। मैं आपके पास अकेले आने और भेंट करनेके लिए तैयार हूं। तब मैं आपको वह पत्र दिखाऊंगा जो मैंने शाइस्ताखां की जेबसे जबर्दस्ती निकाल लिया था। यदि आप मेरी शर्तें स्वीकार नहीं करते तो मेरी तलवार उद्यत है।"

इसी प्रकार रत्नाकर भट्ट नामके एक कविने जो क़रीब क़रीब शिवाजी का समसामयिक (contemporary) था, जयपुरके राजाओंका वर्णन करते हुए एक संस्कृत की कविता की रचना की है। वह उसमें मिर्जा राजा जयसिंह (१६२१-१६६७) के विषयमें, जिनको औरंगजेब ने शिवाजी के ऊपर विजय प्राप्त करनेके लिए नियुक्त कर रखा था, इस प्रकार लिखता है। कवि कहता है, "मिर्जा राजा* ने शिवाजी तथा उन सभी राजाओंको जीतनेमें बड़ा पराक्रम दिखाया, जो «दिल्ली के राज्य सिंहासन पर अधिकार करनेकी इच्छा रखते थे।"» बहुतोंने इसीको शिवाजी की अभिलाषाओंका तत्कालीन प्रभाव समझ लिया है।

मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं इस तरहके बहुतसे पत्र इस स्थान पर उद्धृत कर सकूं। जजिया के विषयमें सम्राट् औरंगजेब को शिवाजी द्वारा लिखे गये एक पत्र में बड़ी वाक्पटुता दिखाई देती है। उसका अनुवाद प्रो० सरकारके «शिवाजी» में पढ़ा जा सकता है। शिवाजी ने अपने भाई के नाम जो पत्र लिखे, और मालोजी घोरपदे, जिसके पिता बाजी घोरपदेकी हत्या कर दी गयी थी, के नाम जो पत्र (एक पत्र) लिखा—उन सबसे वे उद्देश्य स्पष्ट रूपसे प्रकट हो जाते हैं जिनकी प्राप्तिके लिए वे चेष्टा कर रहे थे। उन सब लोगोंको, जिन्हें उनके उद्देश्यकी सचाईके बारेमें सन्देह था, ये पत्र देखकर अनिवार्य रूपसे विश्वास हो जाना चाहिए। वे ऐसी भावनाओंसे पूर्ण हैं जो मुख्य रूपसे शिवाजी के «हिन्दू-पद-पादशाही» के उद्देश्यकी स्थापना करती हैं। शिवाजी के भाई इकोजी (Ekoji) अपने को बीजापुरके आदिलशाह के अधीन और उनका एक जागीरदार मानते थे, जो उनके (शिवाजी के) लिए असह्य था। वे इकोजी को न तो एक स्वतंत्र शासकके रूपमें रहने देना चाहते थे, और न ही बीजापुरके अधीनस्थ शासक के रूपमें, क्योंकि उनकी हिन्दू-साम्राज्यकी योजना में इस प्रकारकी स्थिति बर्दाश्तसे बाहर थी। यही कारण है कि शिवाजी को इकोजीके ऊपर चढ़ाई करनी पड़ी, और उसे पराजित करके अपना आधिपत्य स्वीकार कराना पड़ा। उन्होंने इकोजीको दक्षिण में एक जागीर दे दी। वह अपने

* येन श्री जयसिंहेन दिल्लीन्द्रपदलिप्सव.।
शिवप्रभृतिमपाला यदां भीताः स्वतेजसा॥

—ग्रंथमाला, रामवाड़े सं०
सेरा, जयपुर
वंशावली

भाईको लिखते हैं: "ईश्वरने कृपा करके मुझे अपना दूत बनाकर एक काम करनेके लिए भेजा है। उसने मुझे अखिल-भारतीय साम्राज्य («सार्वभौम-राज्य») सौंप दिया है। उसने मुझे मुसलमानोंको कुचलनेकी शक्ति दी है—जिनकी शरण तुमने ली है। तुम मेरे विरुद्ध कैसे सफल हो सकते हो, और मुसलमानोंको किस तरहसे बचा सकते हो? यदि तुम मेरी सलाह मानते हो, तब तो भला ही भला है; और नहीं तो, तुम्हें निश्चय ही पछताना पड़ेगा।" मालोजी घोरपदेके नाम लिखे हुए अपने पत्रमें शिवाजी कहते हैं: "मराठा सरदारोंकी रियासतोंकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे मैंने सब मराठा सरदारोंका एक संगठन बनाया है ताकि अपने घरके मालिक हम स्वयं बने रहें: और हमारी खुशी हो तो मुसलमानी राज्योंको बनाये रखें अन्यथा उन्हें नष्ट कर दें। मैं इस बातकी पूरी कोशिशमें हूं कि सब मराठे संगठित हो जायें और अपने को मजबूत बना लें। तुम्हें विदेशियोंके बीजापुर राज्यसे इतना अधिक प्रेम क्यों है? वह तो यों ही धूलमें मिल चुका है। बीजापुरका बादशाह तुमको दे ही क्या सकता है, और तुम अपनी राजभक्ति एक मुसलमान बादशाहके ऊपर क्यों लुटा रहे हो? यह पठान तुमको किसी तरहका लाभ पहुंचानेवाला नहीं है। हम मराठे तो उन्हें पहले ही निगल चुके हैं। तुमको याद रखना चाहिए कि तुम एक मराठे हो, और मेरा उद्देश्य है—तुम सबको संयुक्त करना, और एक शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमें ऊंचे उठाना।"

निस्सन्देह यह स्पष्ट है कि शिवाजी के हृदय-पटल पर उत्तरी भारतकी गुप्तों, चालुक्यों, राष्ट्रकूटों और यादवों जैसी प्राचीन क्षत्रिय जातियों तथा उनकी सफल कृतियोंकी स्मृति अंकित थी। बुन्देला राजा छत्रसाल उनके मित्र थे, और उनसे सलाह लेनेके लिए दक्षिण आये थे। शिवाजी के आगरे से निकल भागनेके बाद उत्तरी भारत के चारण और कवि, विशेषरूपसे उनके दर्बारमें आये, और उनका संरक्षण प्राप्त किया। ये सारी बातें शिवाजी के कार्यकी अखिलभारतीय प्रवृत्तिकी ओर संकेत करती हैं।

परन्तु यह आदर्श राजनीतिक नहीं, धार्मिक था। शिवाजी तथा उनके अनुयायियों को प्रणाली का मुख्य उद्देश्य था—मुसलमानोंके धार्मिक अत्याचारों अथवा हस्तक्षेपके बिना, हिन्दुओंके धार्मिक रीति-रिवाजों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना, दिल्ली के सिंहासन पर हिन्दू-सम्राट् बैठानेका यहां कोई इरादा न था। बेसीन में पुर्तगालियोंके विरुद्ध लड़ने में विघ्नन अप्पा या पानीपतमें अब्दाली के विरुद्ध लड़ने

में सदाशिवराव भाऊ को, विदेशियोंकी मूर्तिभंजक प्रवृत्ति से भारतको स्वतंत्र करने के उसी धार्मिक लक्ष्यसे उत्तेजना मिली थी। हालमें जयपुर के ऐतिहासिक-ग्रंथ-रक्षा-गृह में, वहां (जयपुर) के राजा रामसिंह के नाम संस्कृत में लिखा हुआ, शिवाजी के पुत्र सम्भाजी का एक पत्र मिला है जो स्पष्ट रूपसे उसके धार्मिक स्वतंत्रता के आदर्शको चर्चा करता है। इस सम्बन्धमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब तक मराठे भारत में राजनीतिक प्रभुता का उपभोग करते रहे, अर्थात् १८ वी शताब्दीके बिल्कुल अन्त तक, तब तक किसी हिन्दू राजा ने अंग्रेज़ोका संरक्षण प्राप्त करनेकी परवाह न की। पहले-पहले चार मुसलमान नवाबोंने, अर्थात् अर्काट, बंगाल, अवध और हैदराबाद के नवाबोंने ही अंग्रेज़ोंसे सहायता मांगी और १८वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में भारतमें अंग्रेजोंकी शक्तिको मजबूत बनाया। उन्होंनें दूसरों* के सामने भारतकी स्वतंत्रता को बेच दिया।

६. अखिल-भारतीय यात्रा तथा अनुभव.

पांचवीं बात यह है कि शिवाजी जब सम्राट्से मिलनेके लिए आगरे गये थे, उस समय उन्होंने स्वय उत्तरी भारतको देखा था। उन्होंने जान-बूझ कर इस तरह भेंट करनेकी व्यवस्था को थी, सम्राट्की तरफ़से इसके लिए कोई जोर नहीं दिया गया था। उन्होंने उस अवसरका उपयोग सुदूर-उत्तर तथा साम्राज्यकी राजधानी (दिल्ली) की स्थितिका अध्ययन करनेमें किया। घरसे चलनेके पहले वे जयसिंह के साथ इस यात्रा की अच्छाइयों-बुराइयों के ऊपर गम्भीरता-पूर्वक विचार-विमर्श कर चुके थे। जयसिंह के साथ उनकी जो बातचीत हुई, उसमें शिवाजी ने कुछ योजनाएं बना ली थीं जिनकी पुष्टि उनकी बाद की गतियोंसे होती है। शिवाजी की उत्कट इच्छा थी कि वे अपनी आंखोंसे देखें कि सम्राट् और उसके दर्बार की शान-शौकत कैसी है, किन-किन बातोंके कारण वे इतने शक्तिशाली हैं, और उन्हें अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए स्वयं किस तरहका आचरण करना चाहिए। इस बातको पूर्णतया समझनेके लिए उन्होंने सम्राट्के दर्बारमें जानेका निश्चय किया। वे ५ मार्च, १६६६ को रायगढ़ से चले, १२ मई को आगरे पहुंचे, १७ अगस्त को बन्दीगृह से भाग निकले और २०

* यदुनाथ सरकारके «शिवाजी का घराना» (House of Shivaji) में जयपुर के पत्र देखिये।

नवम्बरको घर पहुंच गये। सम्राट्के कारावाससे जिस आश्चर्यजनक ढंगसे वे भागे वह सभी लोग अच्छी तरहसे जानते हैं। इसलिए यहां पर उसके वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं। आगरे से घर लौटते समय उन्होंने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, बनारस आदि बहुतसे पवित्र स्थानोंके दर्शन किये। वे आठ महीने बाद घर लौट कर आये। इस बीच उन्होंने पूरे देशका भ्रमण किया, हर तरहके लोगोंसे बात-चीत की, और अमूल्य अनुभव प्राप्त किये, जिनसे बादको उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। इस बात से यह मालूम पड़ता है कि शिवाजी की योजना में एक अखिल-भारतीय-आन्दोलन शामिल था। तो भी, इसका मतलब यह नहीं कि वे अपने को तुरन्त दिल्ली का सम्राट् बनाना चाहते थे; ऐसा होना उस समय असम्भव था। परन्तु उनका आदर्श यह जरूर था कि वे दक्षिणके छोटेसे राज्यको मौलिक आधार मान कर धीरे-धीरे उसे इस तरहसे बड़ा ले जायं कि अन्तमें एक ऐसे हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना हो जाय जिसका आधिपत्य पूरे भारतके ऊपर हो। ऐसा निश्चित सा जान पड़ता है कि यदि वे अधिक दिनों तक जीवित रहते, तो उनका यह उद्देश्य पूरा हो गया होता।

७. मराठा सरदारों को संयुक्त करने के उपाय.

उस समयके कागज़ातोंमें बहुत सी ऐसी छोटी-छोटी बातें मिलती हैं जिनसे मेरे विचार की पुष्टि होती है। शिवाजी की गोलकुंडा-यात्रा, उनकी कर्नाटक-विजय और अपने भाईके विरुद्ध तंजौर पर चढ़ाई, ये सारी ही घटनाएं साम्राज्य-सम्बन्धी उद्देश्योंको संयुक्त करनेवाली विशाल शृंखला की कड़ियां मात्र हैं। इन कड़ियोंको ठीकसे रख देने पर वे उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं। शिवाजी, स्नेहपूर्ण सहानुभूति एवं सद्भावना के द्वारा जेधे और बन्दल (Bandals) जैसे दक्षिणी मराठोंको अपनी ओर मिलाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे। पर साथ ही साथ, मोरे और शिर्के जैसे उन लोगोंको कठोर दंड देनेमें भी नहीं हिचकते थे, जो उनके उद्देश्योंका विरोध करनेका साहस करते थे। उन्होंने आठ विवाह किये, पर केवल इंद्रिय-तृप्ति अथवा आनन्दके लिए नहीं, वरन् एक निश्चित उद्देश्यकी पूर्तिके लिए। वह युग सामाजिक असमानताओंका युग था। अतः शिवाजी ने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा दक्षिण के अनेक क्षत्रिय परिवारोंको एक साथ मिलानेके उद्देश्यसे ये विवाह-सम्बन्ध पक्के किये। उदाहरणके लिए भोंसले, उन दिनों किसी तरहसे ऊंचे न समझे जाते थे।

शिवाजी ने बालाजी निम्बलकर को, जिसे आदिलशाह ने जबर्दस्ती मुसलमान बनवा दिया था, फिरसे हिन्दू कर लिया, और उसके बाद उसके लड़के (बालाजी) के साथ अपनी लड़कीका विवाह कर दिया। सारे मराठा परिवारोंमें केवल मोरे लोग ही ऐसे थे जिनके साथ शिवाजी ने कुछ सख्ती का बर्ताव किया; वरना वे किसी हिन्दू सेनापति से नहीं लड़े और विदेशी दरबारोंमें रहनेवाले हिन्दू राजनीतिज्ञोंसे, जैसे गोलकुंडा के मदन्ना (madanna) और अकन्ना--दोस्ती करते रहे। तो भी इस बातको स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए कि यद्यपि हिन्दूधर्मकी रक्षा करना शिवाजी का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य था, तथापि एक धार्मिक सम्प्रदायके रूपमें मुसलमानोंके प्रति अथवा मुसलमानी राज्योंके प्रति उनके मनमें दुर्भावना न थी। इस सम्बन्धमें केवल एक शर्त थी--वह यह कि वे भी हिन्दू धर्मके प्रति वही श्रद्धा दिखाते हों जो उन्हें अपने निजी धर्मके लिए हो। वे अपनेको सभी धर्मों और सम्प्रदायोंका संरक्षक समझते और सबके साथ एकसा व्यवहार करते थे। जैसा हम जानते हैं, वे मुसलमानी दरगाहों तथा संस्थाओंको सालाना खर्चा और «इनाम» की जमीनें दिया करते थे, वे केलसी (Kelsi) के सन्त बाबा याकूत का उतना ही आदर करते थे जितना कि रामदासका करते थे। उनकी सेवा में अनेक सच्चे मुसलमान कार्य करते थे, जिनकी नियुक्ति बड़े-बड़े विश्वसनीय तथा सम्मानित-पदों पर होती थी। जैसे क़ाज़ी हैदर, जिसको बादमें औरंगजेब ने दिल्ली के प्रधान न्यायाधीशके पद पर नियुक्त किया। जब शिवाजी आगरे में सम्राट्के बन्दी थे, तब एक मुसलमान «फ़र्राश» ने, जिसका नाम मदारी मेहतर था, उनकी जान बचायी थी। उनका प्रधान नाविक पदाधिकारी, सिद्दी मिसरी नामका एक मुसलमान था। वे सभी से सहायता लेते थे और धर्मकी परवाह किये बिना सभीको अपने यहां नौकरी देते थे। उनको मुसलमानोंसे घृणा न थी। उल्टे उनकी धार्मिक भावनाओं के प्रति समान आदर दिखानेके लिए, उन्होंने रायगढ़में अपने महलके ठीक सामने एक खास मस्जिद बनवाई थी।

८. औरंगजेब द्वारा भय का उचित मूल्यांकन.

और अन्तिम बात यह है कि शिवाजी के उद्देश्य का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण सम्राट् औरंगजेब ने स्वयं प्रस्तुत कर दिया है। क्या कारण था कि इतने बुद्धिमान् तथा

सूक्ष्म बुद्धिवाले सम्राट् ने अपने जीवन के सर्वोत्कृष्ट भाग, और साम्राज्य के समस्त धाय-साधनों को दक्षिणकी विजयमें लगा दिया? कोई यह नहीं कह सकता कि वह बिना सोचे-विचारे या निराधार ढंगसे ऐसा कर रहा था। औरंगजेब ने अपने साम्राज्य के खतरेको स्पष्ट रूपसे देख लिया था। वह शिवाजी के उद्देश्योंको अच्छी तरह से जानता था। उसको इस बातका पूरे तौर पर विश्वास हो चुका था कि शिवाजी का उद्देश्य साम्राज्यके ही ऊपर वार करना था। यही कारण है कि जैसे ही उसे पता चला कि शिवाजी की मृत्यु हो गयी है और उसके (औरंगजेब का) पुत्र अकबर ने सम्भाजी के साथ मिलकर उसकी अपनी ताक़तके खिलाफ़ खतरनाक योजनाएं बनाई हैं, त्यों ही वह सदा-सर्वदा के लिए उस आयोजनका, जो इतने दिनसे रुका पड़ा था, अन्त कर देनेके अभिप्रायसे नीचे उतर आया (अर्थात् दक्षिण पर चढ़ाई कर दी)। उसका यह प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुआ, यह तो दूसरी बात है। परन्तु उस बुद्धिमान् बादशाह की नीति स्पष्ट रूपसे उन उद्देश्योंको सिद्ध कर देती है जो शिवाजी ने बनाये थे, और जिनकी पूर्तिके लिए उनके उत्तराधिकारी उनकी मृत्युके बाद बहुत दिनों तक निरन्तर प्रयास करते रहे।

६. स्वतंत्रता का युद्ध.

मराठा इतिहासके दो महान् निर्माताओं, मेरा मतलब है, शिवाजी और औरंगजेब की मृत्युओंके बीचका जो समय है, उसमें मैं आपको बहुत देर तक अटकाये रखनेकी आवश्यकता नहीं समझता। इस युगमें जहां एक ओर मराठोंके गौरव एवं कीर्तिसे चारों दिशाएं देदीप्यमान हो उठी, वहां दूसरी ओर उस हानिकारक प्रणालीका उदय हो गया जो «सरंजामी» के नामसे प्रसिद्ध है। शिवाजी ने बड़े परिश्रमके बाद इसको दबा पाया था। अन्तमें इसीके कारण मराठा राष्ट्रकी सजातीयता का नाश हुआ। शिवाजी की मृत्यु अचानक होनेके साथ-साथ समयसे पहले भी हो गयी। उनका पुत्र सम्भाजी बहादुर एवं उत्साहपूर्ण होते हुए भी इतना योग्य न था कि एक ही समयमें अनेक शत्रुओंके आक्रमणोंका वार सहन कर पाता। औरंगजेब उसके शत्रुओं में मुख्य था जो पहाड़ परसे खिसक कर नीचे आ जाने वाले बरफ़ और मिट्टीके ढेरकी तरह मराठा-राज पर चढ़ आया। यद्यपि सम्भाजी ने बड़ी बहादुरीके साथ शत्रुका मुकाबला किया, तथापि वह पकड़ लिया गया और बड़ी क्रूरता के साथ तिरस्कृत ढंग

से मार डाला गया। इस प्रकार अपने प्राणघातक जीवनमें वह जो कुछ प्राप्त करने में असफल रहा था, उसे क्रूरता के साथ मृत्युका आलिंगन करके सहज ही में पा लिया। तो भी, इन विपदाओंने देशभक्तों, ब्राह्मणों, मराठों एवं प्रभुओंके एक दलको राष्ट्रीय स्वतंत्रता की रक्षा के सामान्य लक्ष्यके लिए संगठित होनेका उत्साह प्रदान किया। इन देशभक्तोंमें अधिक प्रसिद्ध नाम इस प्रकार थे—प्रह्लाद निरजी, रामचन्द्र पन्त अमात्य, परशुराम त्र्यम्बक प्रतिनिधि, धनजी जाधव, सेनापति सन्तजी घोरपडे, खण्डू बल्लाल चिटनिस, शंकरजी नारायण सचिव आदि। इन सबका मुखिया था शिवाजी का छोटा लड़का राजाराम जो एक खुशमिज़ाज राजा था। घोर असुविधाओंके बीच कार्य करते हुए भी ये देशभक्त औरंगज़ेब के विरुद्ध होनेवाले दीर्घकालीन युद्ध में सफल हुए। शक्तिशाली सम्राट् (औरंगज़ेब) लड़ाईमें इस तरहसे पराजित हुआ कि उसे अपने समस्त दु:खों एवं विपत्तियोंसे निश्चित रूपमें छुटकारा पानेके लिए मृत्यु देवीकी शरणमें जाना पड़ा। रानाडे लिखते हैं: "बिना लगान, बिना सेनाओं, बिना क़िलों और बिना किसी प्रकारके साय-साधनों के, मराठा नेताओंने सेनाएं बना लीं, क़िलोंके ऊपर पुन: अधिकार कर लिया और विजय करनेकी एक ऐसी प्रणालीका विकास कर लिया जिसके द्वारा उन्होंने केवल स्वराज्यको ही फिरसे प्राप्त नहीं कर लिया, वरन् चौथाई एवं सरदेशमुखी वसूल करनेका अधिकार भी पा लिया। जिन देशभक्तोंने युद्धोंकी इस योजना को बनाया और उसे कार्यान्वित किया, उनमेंसे बहुतेरे संघर्षके बीचमें ही कालके ग्रास हो गये, परन्तु दूसरे लोगोंने उसी तल्लीनता एवं सफलता के साथ उनकी जगह ले ली। इन सबका श्रेय अनिवार्य रूपसे औरंगज़ेब की महत्त्वाकांक्षा को दिया जाना चाहिए। उसने महाराष्ट्रके लोगोंकी उत्तेजना को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया, और उसके साथ होनेवाले इस बीस वर्ष के लम्बे युद्धके कठोर अनुशासनने उनके नेताओंकी राष्ट्रीय एवं राजनैतिक शक्तियोंको दृढ़ बना दिया, तथा आगेकी तीन पीढ़ियोंमें उन्हें भारतके सुदूरवर्ती भागों तक विजेताओंके रूपमें पहुंचा दिया। उनमें उच्चतर नैतिक शक्तिका विकास हुआ, और ऐसी आशा का संचार हुआ जो प्रत्येक निराशा के साथ बढ़ती जाती थी। सभीके ऊपर सामान्य रूपमें आने-वाले ख़तरेको देखकर बन्धुत्वका ज्ञान हुआ और यह सोच कर कि वे जो कुछ कर रहे थे, वह अपने धर्मके हितमें कर रहे थे, उनमें इस बातका विश्वास पैदा हुआ कि अन्त में सफलता उन्हींके चरण चूमेगी। ये सारी बातें ऐसी थीं जिन्होंने राष्ट्रके सर्वोत्कृष्ट पुरुषोंके पराक्रम, अतीव सहनशीलता एवं शासनसम्बन्धी चातुर्य जैसे समस्त गुणों

को प्रकट कर दिया। अतएव स्वतंत्रता-संग्रामका यह काल, मराठा-इतिहासका सबसे महत्वपूर्ण युग माना जाता है।

१०. शिवाजी के उदाहरण ने किस प्रकार दूसरों को प्रेरणा दी.

अब हम सरलता से इस बातका अनुमान लगा सकते हैं कि मराठे एक ऐसे समय में जबकि वे बिल्कुल शक्तिहीन थे, किस प्रकार भारतकी सभी लड़नेवाली जातियों में प्राण फूंकनेमें समर्थ हुए। उन सबको (जातियोंको) शिवाजी तथा उनके अनुयायियोंके उदाहरणसे केवल मराठा प्रवृत्ति और उत्साह ही नहीं मिला, वरन् उनको आशा और देशभक्ति भी मिली, और मिली—युद्ध एवं स्वतंत्रता की वह व्यावहारिक शिक्षा, जिसने शीघ्र ही लोगोंको प्रभावित किया। सिख, जाट, राजपूत और बुन्देले दृढ़चित्त हो गये और औरंगजेब की मृत्युके बाद उन सबने एक राष्ट्रीय विद्रोह करने की ठान ली। अब मैं मराठा संविधानके सम्बन्धमें शिवाजी की धारणा क्या थी, यह समझानेके लिए दो चार बातें बताऊंगा।

हम जानते हैं कि शिवाजी ने एक छोटे-से प्रदेशको लेकर मराठा राज्यकी नींव डाली थी, जिसके संविधानकी व्याख्या लोगोंने अलग-अलग ढंगसे की है। कुछ उनके अष्ट-प्रधान के विधान की उपमा वर्तमान मन्त्रिमंडलोंसे देते हैं, परन्तु इन आठ मंत्रियों को किसी प्रकारके स्वतंत्र अधिकार नहीं मिले थे, और शिवाजी से ऐसी किसी व्यवस्था की आशा भी न करनी चाहिए जिसमें उन्हें मंत्रियोंको अपनी रत्ती भर सत्ता भी देनेकी आवश्यकता होती। शिवाजी ने अपने राज्यका शासन चाहे कितनी ही बुद्धिमानी से क्यों न किया हो, फिर भी वे एक निरंकुश एवं उदार स्वेच्छाचारी शासक थे। उनकी इच्छा ही क़ानून थी, यद्यपि उसका लक्ष्य राष्ट्रकी सर्वोत्कृष्ट रुचियोंकी ही ओर निर्दिष्ट हुआ करता था। हम पूर्वी देशोंके निवासी, सदा से अपने सभी राजनैतिक, सामाजिक या किसी दूसरी तरहके मामलोंमें, व्यक्तिगत प्रभावों से शासित होते रहे हैं। हम लोग उस अनुशासनके अन्तर्गत कभी नहीं रहे हैं जो स्वास्थ्य-प्रद ढंगसे वैधानिक संस्थाओंका संचालन करनेके लिए आवश्यक होता है। यहां तक कि "विधान" शब्द भी हमारे लिए विदेशी है। मराठोंके साथ तो विशेष रूपसे यही बात रही है। यदि हमारे भाग्यका संचालन करनेके लिए सौभाग्यसे हमें एक बुद्धिमान् शासक मिल जाता तब तो हमारा प्रबन्ध सुचारु रूपसे चलने लगता, और हम वैभव-

सम्पन्न हो जाते: यदि संयोगसे राजा बुरा होता या उसका अस्तित्व नहीके बराबर होता, तो पतन होने लगता। "यदि अच्छा हो तो सब भला ही भला; यदि दुष्ट, निर्दयी और अत्याचारी हो, तब भी उसके सामने सिर झुकाये रहें और उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहें जब कि उस अन्यायपूर्ण शासनका अन्त हो जायगा।" जब तक शिवाजी जीवित रहे, पूरे राष्ट्रने उनका समर्थन किया और उनकी आज्ञा मानी; पर ज्यों ही उनकी मृत्यु हुई और शासनका भार उनके पथ-भ्रष्ट पुत्रके कन्धों पर पड़ा, त्यों ही पूरा राष्ट्र अपने हित और अहितके लिए उसकी दया पर आश्रित हो गया। बादके दिनोंमें, उनके द्वितीय पुत्र राजाराम ने अपने मंत्रियों तथा सेनापतियोंको पूरी आजादी दे दी। शिवाजी के नेतृत्वमें प्रशिक्षित होनेके कारण वे सभी असाधारण योग्यता रखते थे जिसके फलस्वरूप मराठे सबसे अधिक दृढ़ संकल्पवाले मुग़ल सम्राट् (औरंगजेब) के विरुद्ध एक सफल युद्ध करनेमें समर्थ हो सके। औरंगजेब की मृत्युके बाद जब शाहू लौटकर आया तब सारी बातें एकदम बदल गयीं और मराठा-राज्य की शासन-विधि की मौलिक योजना का पूर्णतया रूपान्तर हो गया। अब मैं आपको उसीके बारेमें कुछ समझाना चाहता हू।

११. चौथाई, उसकी उत्पत्ति और उद्देश्य.

शिवाजी ने बुद्धिमानीके साथ एक बड़ा लाभदायक राजनैतिक यन्त्र गढ़ डाला और स्वयं उसको कार्यरूपमें परिणत किया। वह यन्त्र था—शत्रु-देश पर «चौथ» एवं «सर-देशमुखी» नामके करोंको लगानेकी प्रणाली। चौथ तो एक प्रकारका वह कर था जो शत्रु अथवा विजित प्रदेशोंसे वसूल किया जाता था, और सरदेश-मुखी लगान लगानेका एक तरहका वह अधिकार था जिसे वे लोग «वतन» के नामसे पुकारते थे और जिसके ऊपर प्राचीन बहमनी कालमें मराठा दलोंके सर्दार अपना दावा करते थे, और जिसे वे बादके दिनोंमें भी बराबर वसूल करते रहे। हालमें प्रकाशित नये प्रमाणोंके आधार पर यह समझा जाता है कि चौथ, यानी मिलने वाले लगान का एक चौथाई भाग, वसूल करनेकी प्रथा, शिवाजी के बहुत पहलेसे, भारतके पश्चिमी भागमें प्रचलित थी। गोआ के प्रो॰ पिसुरलेंकर (Pissurlencar) और कलकत्तेके डॉ॰ सुरेन्द्रनाथ सेन ने, वहां पर (गोआ के) पुर्तगालियोंके प्राचीन-ग्रन्थ-रक्षा-ग्रह का परीक्षण करनेके पश्चात् कुछ कागज़ात प्रकाशित किये हैं जिनकी

तिथियां १५९५, १६०४-१६०६, और १६३४ हैं। उनमें यह दिखाया गया है कि उत्तरी कोंकणमें रामनगरके राजाने पुर्तगालियोंके अधीनस्थ राज्य दामनसे, इस आधार पर यह चौथ वसूल की थी कि पुर्तगालियों* के हाथमें आनेके पूर्व वे प्रदेश रामनगरके राजाओंको चौथ दिया करते थे। शिवाजी ने उस प्रथा को जल्दीसे जल्दी अपना लिया, और जीते हुए अथवा अधीनस्थ प्रदेशों एवं राज्योंमें उसको लागू कर दिया। उन्होंने इस बातकी गारंटी ली कि इस रूपमें धन चुकानेके बदलेमें उनको और करोंसे मुक्ति मिल जायगी और साथ ही किसी दूसरी ताक़तके द्वारा सताये जाने पर उनकी रक्षाकी जायगी। बाहरी प्रदेशों पर, चाहे वे पूरी तरहसे जीत लिये गये हों या प्रांशिक रूपमें या कभी-कभी केवल पदाक्रान्त ही किये गये हों, चौथ लगानेकी यह प्रथा शिवाजीके उत्तराधिकारियोंके हाथमें एक तैयार अस्त्र सिद्ध हुई और उसके कारण वे भारतके दूरस्थ भागों तक अपनी शक्तिका विस्तार करनेमें समर्थ हुए। औरंगजेब द्वारा सम्भाजी के बन्दी बनाये जानेके बाद चारों ओर गड़बड़ी फैल गयी और एक संकट-पूर्ण स्थिति पैदा हो गयी। ऐसे कुसमयमें चौथ लगानेकी यह प्रथा, इधर-उधर भटकनेवाले मराठा दलोंके विभिन्न सरदारोंके लिए एक लाभदायक उपाय सिद्ध हुई, और इसीके बल पर वे सफलतापूर्वक सम्राट् का प्रतिरोध करनेमें समर्थ हो सके। मराठा शक्तिके जिस विलक्षण प्रभावने मुग़ल-साम्राज्यको धीरे-धीरे खोखला बनाना आरम्भ कर दिया था, उसका मूल कारण छापामार-युद्ध-प्रणाली के साथ-साथ यह उपाय (चौथ) ही था। मराठा संविधानमें होनेवाले उन परिवर्तनोंको समझनेके लिए, जो बादमें अर्थात् औरंगजेब के आक्रमणके विघ्नपूर्ण दिनोंमें और उसकी मृत्युके समय हुए, उचित यही होगा कि हम विषयका परीक्षण और अधिक बारीकीके साथ करें और महाराष्ट्र की स्थितिमें जो विभिन्न बातें मौजूद थीं उनको अच्छी तरहसे समझ लें।

१२. अपनी पैतृक सम्पत्तिके लिए मराठा देशमुखोंका प्रेम.

मराठे स्वभावसे ही अपने « वतनों » या पूर्वजोंसे प्राप्त ज़मीनोंसे बड़ा प्रेम रखते थे, और बहुधा उनके लिए उन्हें भारी मूल्य, यहां तक कि अपनी जानें तक देनी पड़ती थीं। बहमनी शासन कालमें, या शायद उससे भी पहले, जब महाराष्ट्रकी ज़मीन स्वच-

* डा० सेन की « मराठोंकी सैनिक प्रणाली » देखिये, जिसमें विषयको पूरी तौर पर लिया गया है।

स्थित कर दी गयी थी और वहां खेती की जाने लगी थी, तब विभिन्न मराठा परिवारों को जो लालच दिया गया था वह था «वतन» जमीनोंका स्थायी रूपमें दान। दूसरी जगहोंसे आये हुए अनेक क्षत्रियोंने, जो आमतौरसे "मावल" कहलाते हैं, अपने रहने के लिए पश्चिमी घाटोंके पहाड़ी ढालोंको, जो इतिहासमें मावल देशके नामसे प्रसिद्ध है, साफ़ किया। वहाके जंगल काट डाले गये और हिंसक पशुओंका नाश कर दिया। आरम्भमें मावल लोग छोटे-छोटे स्वतंत्र शासकोंकी तरह से उन प्रदेशों पर शासन करते थे, जिनके ऊपर देशमुखोंके रूपमे उनका अधिकार था। देशमुखोंका अर्थ था—«देश» के मुखिया लोग, या हमारे हिसाबसे जागीरदार। बादको शिवाजी ने इन्हीं लोगोंको अपने अधीन कर लिया और अपना सहायक बना लिया। ऐसा करनेमें उन्होने मुख्य रूपमें तो युक्तिसे ही काम लिया, यदाकदा आवश्यकता पड़ने पर तलवारका भी प्रयोग किया। मोरे, शरके (Shirkes), दलवित, जेधे, जाधव, निमबलकर, खोपडे और अन्य मराठे, जिनमें से समीने शिवाजी की प्रारम्भिक क्रियाओं में प्रमुख भाग लिया, परम्पराप्राप्त देशमुख अथवा वतनदार थे, जिनका कर्तव्य यह था कि वे देशमें बस्तियां बसायें, उसकी व्यवस्था करें और उसे आबाद करें, ताकि सरकारको वहां से लगान मिले। यह प्रतिक्रिया दीर्घकालीन एवं कष्टदायक थी। इसके अन्तर्गत असंख्य लोगोंकी जानें गई, अतीव धन एवं परिश्रमका व्यय हुआ, और जैसा कि स्वाभाविक ही था, भू-स्वामियों के हृदयमें अपनी उस पैतृक भूमिके लिए, जिसकी सेवा और सुधार वे पीढ़ी दर पीढ़ी करते आये थे, अत्यधिक प्रेम तथा रुचि पैदा हो गई। देशकी सरकारने साहसिक कार्य करनेवाले इन मराठोंको पट्टे पर जमीन दे दी, और वे टैक्सोंसे मुक्त कर दिये गये। जब भूमिमें निश्चित रूपसे सुधार हो गया और वह सालाना लगान देने लायक हो गयी, तब लगान वसूल करनेका काम इन्हीं देश-मुखों को सौंप दिया गया। उनसे यह कह दिया गया कि जितना लगान मिलनेकी आशा हो, उसका ९०% वे सरकारको दे दें और बाक़ी १०% अपने परिश्रमके पारितोषिकके रूपमें, अपने लिए रख लें। यही १०% का भाग सर-देशमुखी कहलाने लगा और शुरुसे लेकर आखिर तक वंशपरम्परागत आयका एक ऐसा निश्चल साधन बना रहा, जिसके ऊपर छत्रपति से लेकर नीचेके छोटेसे छोटे जागीरदार तक सभी मराठा सरदार पूर्व-पुरुषोंसे प्राप्त पैतृक-धनके रूपमें दावा करते रहे। उन्होंने पूरी ताक़तसे उसकी रखवालीकी और अपनी जान तककी बाजी लगाकर उसकी रक्षा की। मराठा इतिहासके पाठकगण इस बातका स्मरण कर सकते हैं कि जब १७१८

१० में पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने सैयद भाइयोंसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेके लिए सम्राट् की सनदें प्राप्त कर ली थी उस समय छत्रपति शाहू ने किस कठोरता एवं दृढ़ता के साथ सरदेशमुखी-कर का यह १०% भाग अपने लिए सुरक्षित कर लिया था, और किस प्रकार उसने उस रूपमें वसूल हुए धन को अपने उन अनेक प्रियजनों तथा व्यक्तियोंके बीचमें बांटा था जिन्होंने मुसीबतके समय उसकी मदद की थी। जाधव और मोरे लोगोंके मुकाबले में भोंसले स्वयं पहले देशमुख ही थे। हां बादको जरूर वे लोग स्वतंत्र मराठा राज्यकी स्थापना करनेमें सफल हुए। इस बातको स्पष्ट रूपसे ध्यानमें रखना उचित है कि सरदेशमुखी और चौथका स्वरूप अलग-अलग था। सरदेशमुखी तो बिल्कुल फ़र्क-मद (item) था, जिसकी योजना मुख्य रूपसे विदेशी प्रदेशोंको अपने अधीन करनेके अभिप्रायसे बनाई गयी थी। वह एक तरहका कर था।

इस प्रकार शिवाजी के उत्कर्षसे शताब्दियों पहले तक मराठा देशमुख दक्षिणकी जमीनोंमें रुचि रखते आये थे। व्यावहारिक रूपमें वे शासक अधिकारियोंसे स्वतन्त्र रहते थे, क्योंकि वे लोग उन्हें केवल उसी दशा में दंड दे सकते थे जब कि वे सरकारी लगान न चुकायें। मावल देशमें एक लम्बे अरसे तक वे कितना भयपूर्ण एवं साहसिक-कार्यों से युक्त जीवन व्यतीत करते रहे हैं, इसकी झलक उन तमाम पुराने कागजोंमें मिलती है, जो हाल ही में खोज निकाले, और प्रकाशित किये गये हैं। इस बातका मुख्य श्रेय राजवाड़ेको है जिन्होंने उनको अपनी उन पुस्तकोंमें छापा है, जो शिवाजी-काल के ऊपर लिखी गयी हैं, अर्थात् १५ से २० तक २० और २२। शिवाजी के उत्कर्षसे लगभग एक शताब्दी पहले वहां पर अधिकारों और धन-सम्पत्ति पर अधिकार जमा लेनेके विषयमें, उत्तराधिकारियों और उत्तराधिकारके विषयमें, चोरियों और डकैतियोंके विषयमें, हत्या और तमाम तरहकी छेड़खानियोंके बारेमें कितने अधिक और कितने भयंकर लड़ाई झगड़े हुआ करते थे, इसका विस्तृत वर्णन उन कागजोंमें मिलता है। उनको पढ़कर स्पष्ट रूपसे इस बातका आभास मिल जाता है कि उस समय देशकी दशा कैसी थी और शिवाजी ने किस तरह अपने लाभके लिए उसका उपयोग किया था। शिवाजी सूक्ष्म-बुद्धि के तो थे ही। अतएव उन्होंने मावलोंकी प्राकृतिक योग्यता का अन्दाज लगा लिया, और यह बात मालूम कर ली कि उनके अन्दर राष्ट्र-निर्माण-सम्बन्धी क्रियाओंकी सामग्री प्रस्तुत थी। उस समय तक वे मावलदेश-मुख, एक दूसरेको नष्ट करनेवाले झगड़े बखेड़ों और पारिवारिक कलहोंमें, हत्या करने, आग लगाने, मार लगा कर लोगोंको लूट लेने और इसी तरह

के दूसरे पाप कर्म करनेमें ही अपनी शक्ति एवं पराक्रमको नष्ट किया करते थे। यह सब यहां प्रायः दिन हुआ करता था। परन्तु देशकी प्राकृतिक विषमता तथा आने जाने की सुगमता के अभावके कारण बीजापुर और अहमदनगरके दूरवर्ती शासक न तो उन्हें रोक पाते थे और न ही उनकी ये बातें बन्द कर पाते थे। फिर—वहां के लोगों की प्रवृत्ति भी तो बड़ी कलहकारी थी। सच तो यह है कि तेजीके साथ आगे बढ़ते हुए मुगलों के विरुद्ध होनेवाले अपने युद्धोंमें, शिवाजी के पिता शाहजी ने, पहले ही इनमें से कुछ मावल-देशमुखों की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी और बचे हुए कामको पूरा करनेका भार अपने कार्य-कुशल पुत्र शिवाजी के लिए छोड़ दिया था। जब शिवाजी ने महाराष्ट्रमें अपना राष्ट्रीय कार्य आरम्भ किया और उनके पिता ने पुरानी जगह छोड़ कर सुदूर दक्षिणको अपना कार्य-क्षेत्र बना लिया, उसके बाद भी वे जेधे और बान्दल लोग जो शाहजी के पास नौकर थे, बराबर उसके पुत्र शिवाजी की सहायता करते रहे। संयोगसे बीजापुरमें नौकरी करनेवाले मावल देशमुखोंमें मोरे लोग सबसे अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली थे। उन्होंने शिवाजी की प्रारम्भिक क्रियाओं का भरसक अवरोध किया, और प्रत्यक्ष रूपसे दोनोंके बीच लड़ाईकी नौबत आ गयी, जिसका नतीजा यह हुआ कि शिवाजी के हाथों से उन्हें कठोर दंड भुगतना पड़ा। शिवाजी की द्रुतगामी एवं अद्भुत सफलता का कारण बताते समय, हमको मावल देशमुखोंकी इस कलहकारी प्रवृत्ति तथा अपनी मौलिक पैतृक-सम्पत्ति के लिए उनके अगाध प्रेमका ध्यान रहना चाहिए। मराठा शासनके पिछले दिनोंमें हम अवसर देखते हैं कि ग्वालियरके सिंधिया, धारके पवार अथवा बड़ौदा के गायकवाड़, महाराष्ट्र से बाहर मालवा और गुजरातमें अपने लिए बड़े-बड़े राज्य बना लेनेके बाद भी, किस लगन और सतर्कता के साथ, दक्षिणमें अपने वंश-परम्परागत छोटे-छोटे वतनों या देशमुखियोंकी रखवाली किया करते थे। हम बादको देखेंगे कि पेशवाओं द्वारा चलाई हुई «सरंजामी» प्रणाली, दक्षिणमें मराठों के अपनी वंश-परम्परागत भूमियोंके प्रति होनेवाले इस प्रेम पर आधारित है।

११. सरदेशमुखी तथा सरंजामी की उत्पत्ति.

सरदेशमुखी के वास्तविक रूपको समझने के लिए हमको उन तमाम शासियों की सहायताहे महाराष्ट्रमें प्रचलित ग्राम्य-सरकारकी बनावट तथा व्यवहारों का अध्ययन करना चाहिए जो तत्कालीन झगड़ोंके कानूनी निर्णयोंके रूपमें छापी गयी हैं।

«वतन»-सम्बन्धी अधिकार बहुत तरहके रहे हैं। «पटेल» या «पटिल» गांव का मुखिया होता था, जो उसकी सभी बातोंकी देखभाल रखता था, और «कुलकर्णी» उसका लेखक था जो गांवके रिकॉर्ड रखता था। पटेल और कुलकर्णी को उनकी सेवाओंके बदलेमें जमीन दे दी जाया करती थी, जिनको एक अर्थमें हम «वतन» भी कह सकते हैं। पटवारी और पांडे, गौदास और नदगौदास, और कुछ नहीं है, वरन् प्रान्तोंमें प्रयोग किये जानेवाले, पटेल तथा कुलकर्णी के पर्यायवाची शब्द हैं। पहले दो का प्रयोग केन्द्रीय-प्रान्तोंमें और बाद वाले दो (शब्दों) का प्रयोग, दक्षिणमें कनाड़ी देशमें किया जाता था। «देसाई», संस्कृत पद «देश-स्वामी» या कदाचित् «देशपति» का बिगड़ा हुआ रूप है। उसको देशमुख भी कहा जाता है। देशमुख कई देसाइयों अथवा देशमुखोंके ऊपर होता था, अर्थात् कई गांवोंके एक समुदायकी देख भाल करता था। बादके दिनोंमें «सरंजाम» का अर्थ उस जमीनसे लगाया जाने लगा जो सैनिक सेवा के लिए दी जाती थी। «सरंजाम» शब्द जिसका अर्थ है—तैयारी, शिवाजी के समयके कागजोंमें मिलता है। जब राजा अपने योग्य अनुचरों या प्रजा के लोगोंको उपाधि देता अथवा हाथी, घोड़ा या पालकी देकर सम्मानित करता तो उन सबके रखरखाव के लिए सामग्री जुटाना अर्थात्, «सरंजाम» उन्हींका काम समझा जाता था। तो भी, बादके दिनोंमें, इस शब्दका अर्थ केवल सैनिक सेवा के लिए तैयारी रखना—सरकारकी लड़ाइयां लड़ने के लिए सैनिकों को नौकर रखना और उनका बोझ सम्भालना रह गया। जिन लोगोंको इस तरहके सरंजामके लिए जमीन मिली हुई थी, वे सरंजामदार कहलाते थे। उनका उत्कर्ष विशेषरूपसे शिवाजी के पुत्र राजाराम के समयसे हुआ। बादको पेशवाओंके समयमें मराठा शक्तिका विस्तार मुख्यरूपसे इन्हींके कारण हुआ। लोकप्रिय भाषा में सरंजाम और जागीरका मतलब करीब-करीब एक ही है। वर्तमान राजा-महाराजा जैसे ग्वालियर, इन्दौर, बड़ौदा, धार, मध्य भारतमें देव, या दक्षिणमें मिराज, सांगली, जमखिंडी और रामदुर्ग आदि के राजा-महाराजा, सभी एक तरहके सरंजामदार थे। उनकी सेवाके विषयमें निश्चित व्यवस्था तथा नियम थे जिनके उदाहरण हमको पूना दफ्तरसे छपे हुए पेशवा के रोजनामचोंमें—विशेष करके उन ग्रंथोंमें जिनका सम्बन्ध माधवराव प्रथमसे है—पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं। चूंकि मराठोंको उन तमाम राजधानियोंके सहित, जो उनके शासनका केन्द्र थीं, सरंजामदारोंकी यह प्रणाली, पेशवाओंकी विशेष रचना के मामले प्रसिद्ध हो गयी है और मराठोंके पतनका बहुत कुछ उत्तर-

दायित्व उसके ऊपर डाला जाता है, इसीलिए यह समझ लेना जरूरी है कि मराठा राज्यके संविधानके अन्तर्गत उसका यथार्थ रूप क्या है और उसकी ठीक-ठीक उत्पत्ति किस तरहसे हुई। चूंकि विषय जटिल है और मामूली विद्यार्थी इसको ठीकसे नहीं समझ पाते, इसीलिए मैंने जान बूझकर इसे इतने विस्तारके साथ समझानेकी चेष्टा की है।

शिवाजी स्थायी रूपसे जमीन दे देनेके बिल्कुल खिलाफ थे, चाहे वह किसी भी उद्देश्यसे क्यों न दी जाती हो। उन्होंने दृढ़ता के साथ पुरानी रीतिको बन्द किया। इस सिलसिलेमें वे बहुधा उन सब जमीनों और जागीरोंको जब्त कर लिया करते थे जो उनसे पहलेके शासकों द्वारा सेनापतियोंको दे दी गयी थीं, और उनके बदलेमें नकद तनख्वाहें दिया करते थे। राजवाड़ेकी वे पुस्तकें जिनमें शिवाजी के शासनकालका वर्णन है, ऐसे कागजातोंसे भरी पड़ी हैं जो यह दिखाते हैं कि शिवाजी ने किस प्रकार उन सब जमीनोंको हस्तगत कर लिया था जो जागीरके रूपमें दी जा चुकी थीं। वे जागीरदार बनानेकी प्रणालीसे होनेवाली हानियोंको स्पष्टरूपसे समझते थे। अशान्ति और दुर्व्यवस्था के उस युगमें जागीरोंका उपभोग करनेवाले सैनिक सरदारोंके ऊपर कठोर नियंत्रण रखना, अच्छी सड़कों और पत्रव्यवहारके साधनोंके अभावमें विशेषरूपसे कठिन था। वे प्रायः शासकके विरुद्ध विद्रोह कर देते, खुल्लम खुल्ला दुश्मनसे मिल जाते, स्थायी रूपसे लड़ने के लिए कुशल सैनिक रखनेकी परवाह न करते, और राज्यके मूल्य पर धन एवं शक्तिका संचय करनेकी चेष्टा करते। इस प्रकार उनका रंग-ढंग क़रीब करीब योरोपकी सामन्तशाहीकी तरह का था। यद्यपि जागीरके रूपमें ज़मीन पानेके लालचसे काफी समय तक ऐसे सैनिक और सर्दार मिलते रहे जो बहादुरीके साथ राज्यकी महत्वपूर्ण सेवा करते थे, और इस प्रकार यह प्रणाली निश्चय ही सफल रही; पर यह कुछ जरूरी तो था नहीं कि उनके उत्तराधिकारी भी अपनी सेवामें उतने ही बहादुर, खुशीसे काम करनेवाले और सच्चे होते। वे बदलेमें राज्य की पर्याप्त सेवा किये बिना ही अपनी पैतृक-सम्पत्तिका उपभोग करने का हक़ जताते थे। जिस किसी ने पहलेपहल जागीर पाई होगी, वह जरूर एक योग्य व्यक्ति रहा होगा जो राज्यके प्रति की गयी अपनी सेवा एवं बलिदानके लिए पुरस्कार पानेका उचित अधिकारी था; परन्तु उसके उत्तराधिकारी साधारणतः बिल्कुल अयोग्य सिद्ध हुए। वे सैकड़ों तरीक़ोंसे राज्यको तकलीफ़ पहुंचाने और उसके साथ दग़ाबाजी करने लगे। शिवाजी ने अपनी जीवनवृत्तिमें बहुत पहले ही इस प्रणालीसे होनेवाली

हानियोंको समझ लिया था। इसीलिए वे हर तरहकी सेवाके लिए नकद रुपया दिया करते थे और इस बातका हमेशा ध्यान रखते थे कि उनके पास खूब रुपया भरा रहे। उन्होंने विभिन्न धार्मिक संस्थाओंको अथवा दानके रूपमें दी हुई जमीनों तक को जब्त कर लिया था और बदलेमें उनको नक़द रुपया देने लगे थे।

किन्तु शिवाजी की मृत्युके बाद एक साथ बहुत सी प्रतिकूल परिस्थितियां आ जानेके कारण यह विवेकपूर्ण नीति छोड़ देनी पड़ी। अब मुझे उन परिस्थितियोंके विषयमें बताना चाहिए। अपने तीन गौरवशाली पूर्व-पुरुषों द्वारा आरम्भ किये हुए दक्षिण-विजय के अधूरे कार्यको पूरा करनेका पक्का इरादा करके, शक्तिशाली सम्राट् औरंगजेब ने एक विशाल एवं सुसज्जित सेना के साथ १६८३ में महाराष्ट्र के ऊपर आक्रमण कर दिया और अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अपने सुविस्तृत साम्राज्यके अपार धन-साधनोंको लड़ाईमें लगा दिया। वह जिन लोगोंको भी जीतनेका इरादा करता था वे उसके नेतृत्वमें काम करनेवाले सेनापतियोंका नाम सुन कर ही भयसे कांप उठते थे। थोड़े समयमें उसने बीजापुर और गोलकुंडा, दोनों राज्योंको मिला लिया, मराठा राजा सम्भाजी को पकड़ लिया और मरवा डाला, उसकी पत्नी और पुत्रको बन्दीगृहमें डाल दिया और एक ही झोंकमें अपना महान् उद्देश्य लगभग पूरा कर डाला। ऐसी शोचनीय परिस्थितिके मध्यमें शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम ने चारों ओर हाथ-पैर मारने आरम्भ किये और जो भी साधन उसके हाथ लगे उनकी सहायता से अपने राष्ट्रकी रक्षा करने, तथा मराठा शक्तिका विस्तार करनेके लिए सौध प्रणालीको चलानेका कार्य आरम्भ किया। राजाराम के पत्रोंका एक नमूना नीचे दिया जाता है। यह पत्र उसने जुलाई, १६९९ में, गोआ के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक छोटी-सी रियासत सुन्दा (Sunda) के शासक, सदाशिव नायक के नाम लिखा था। उसको पढ़ कर यह बात अच्छी तरहसे समझमें आ सकती है कि अपने हितकी रक्षा करनेके लिए उसने सहारा किस तरहसे प्राप्त किया। पत्र जिंजी से उस समय लिखा गया था जब कि सम्राट् न केवल मराठों को, वरन् दक्षिणी भारत भरके, दूसरे राज्यों और प्रदेशोंको भी, जो एक तरहसे स्वतन्त्र ही थे, जीत लेनेकी धमकी दे रहा था। पत्र इस प्रकार है: "हम आपका पत्र तथा उन सन्देशोंको पाकर प्रसन्न हैं जो आपने अपने दो विश्वसनीय प्रतिनिधि, कोन्हेर पन्त और रायजी रामाजीके हाथ भेजे हैं। हमारी वर्तमान स्थितिमें, आपकी ओरसे पारस्परिक सहायता एवं स्थायी मित्रता का जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है उसके सम्बन्धमें होनेवाले सौदेकी सारी

बातें विस्तारके साथ, उन लोगोंने हमें बता दी हैं और उन्हें स्पष्ट कर दिया है। हमने अपने मंत्री, शंकरजी पंडित सुमन्त और नीलकृष्ण के साथ बैठकर प्रस्ताव पर पूरी तरहसे विचार कर लिया है, और जैसा कि आपने प्रार्थना की है, हम प्रसन्नता के साथ इस समझौतेकी लिखापढ़ी कर रहे हैं और अपनी ओर से उसका पालन करनेके लिए धर्मके नाम पर शपथ लेकर उसे आपके पास भेज रहे हैं। हमलोगोंको विश्वास है कि आप भी अपनी ओरसे उसका पालन करनेकी चेष्टा करेंगे। आपका प्रस्ताव था कि २२,२०० हॉन (७८,००० रु०) सालाना करके बदलेमें, वही रकम जो इस समय आप मुसलमान शासकोंको दे रहे हैं, आपको और आपके उत्तराधिकारियोंको, अपने सारे क़िलों और महलोंके सहित पंचमहलोंका प्रदेश, स्थायी रूपसे दे दिया जाय। हम इस प्रस्तावको स्वीकार करते हैं, और मुसलमानोंको पराजित करने तथा उनसे या आपको सतानेवाले दूसरे शत्रुओंसे आपकी रक्षा करनेका वचन देते हैं। जब आपके शत्रु इस तरहसे पराजित कर दिये जायेंगे तब आपको हर साल नियमित रूपसे सालाना कर की रक़म हमको चुकानी होगी। इसके अतिरिक्त आपको मुसलमानों के साथ लड़ाई भी करनी चाहिए। इस तरहसे आप जो नये प्रदेश जीत लेंगे वह आपको दे दिये जायंगे। पर उस कृपाके लिए एक शर्त होगी। वह यह कि हमारी अधिपति शक्तिकी स्वीकृतिके रूपमें आपको उन प्रदेशोंके लिए पहलेसे निर्दिष्ट कर हमें चुकाने पड़ेंगे। जब कभी कोई बाहरी ताक़त आपको धमकायेगी या सतायेगी, तो हमारी फ़ौजें तुरन्त आपकी सहायता के लिए दौड़ा दी जायंगी और वे आपके लिए शांति एवं सुरक्षा की व्यवस्था कर देंगी। इस प्रकार हमलोग सदैव आपके राज्यके साथ मित्रवत् आचरण करते रहेंगे। इसी बातके लिए धर्मके नाम पर की हुई अपनी प्रतिज्ञा के चिह्न के रूपमें हम आपके पास चलगते «बिल्व» की पत्तियां तथा महादेव जी पर चढ़े हुए फूलोंके हार और रोटी भेज रहे हैं। हमें विश्वास है कि आप इन्हें स्वीकार करेंगे और इस पवित्र मैत्रीको निरन्तर बढ़ाते* रहनेकी चेष्टा करेंगे।"

जब राजाराम महाराष्ट्र छोड़कर जिंजी चले गये, उस समय उनके खज़ानेमें बिल्कुल रुपया नहीं था। मराठा राज्यकी राजधानी, रायगढ़, सम्राट् के हाथमें थी। मराठों को न कोई सेना थी और न सरकार। वह राजाराम के कुछ चतुर समर्थकों, योद्धाओं और राजनीतिज्ञोंके निर्भीक दिमाग़ोंका ही काम था, जो परिस्थितिका सामना

* शिवा चरित्र साहित्य III, ४८२

करनेके लिए उठ खड़े हुए और स्थिति पर क़ाबू करनेके लिए अपनी सामर्थ्यके अनुसार अच्छेसे अच्छे साधन और उपाय ढूंढ़ निकाले। दूसरी ओर सम्राट् अपने विरोधियोंके उपायों और क्रियाओंको पूरी तौरसे निगरानी करता रहा, और मराठा सैनिकोंको अपनी सेना में मिल जाने तथा भागे हुए छत्रपति के साथ लड़नेके लिए हर तरहके लालच दिखाकर तोड़नेकी भरसक चेष्टा करता रहा। उसने सम्भाजी द्वारा सताये हुए मराठा सर्दारोंको इनाम और जागीरें देकर मराठोंका पक्ष बहुत कमजोर कर दिया। ऐसी विपत्तिमय परिस्थितियों में पड़ कर राजाराम तथा उसके परामर्श-दाताओंको इस बातके लिए बाध्य हो जाना पड़ा कि वे अपने सहायकोंको सेवाएं प्राप्त करने तथा उनको अपने अधीन बनाये रखनेके लिए अपनी ओरसे भी उनको उसी तरहके प्रलोभन दें। राजाराम ने मराठा सर्दारोंको जो कुछ लिखा उसका एक नमूना मैं आपको यहां दे रहा हू—"हम यह जानकर प्रसन्न हैं कि तुमने देशकी रक्षा की है और भक्तिपूर्वक राजा की सेवा की है। तुम बड़े बहादुर और काममें आने वाले हो। हम जानते हैं कि तुम्हारे पास सम्राट् की दी हुई इनामकी जमीनें है, पर तुम अब उसका साथ छोड़ने और हमारे लिए लड़ने एवं हमारे तथा हमारे राष्ट्रके लिए यातनाएं सहनेके लिए तैयार हो। सम्राट् ने देशमें प्रलय मचा रखी है। उसने सारे हिन्दुओंको मुसलमान बना लिया है। अतः, तुमको (हिन्दुओंके) बचाव और प्रतिशोध के लिए सतर्कता के साथ उपाय ढूढ़ निकालने चाहिएं। इस सम्बन्धमें तुम जो कुछ करो उसकी सूचना हमारे पास बराबर भेजते रहो। यदि तुम राजभक्तिसे विमुख न होगे, और इस घोर विपत्तिके समय राज्यकी (मराठा) सहायता करोगे तो, धर्मके नाम पर हम इस बातकी प्रतिज्ञा करते हैं कि तुम्हारी वंश-परम्परागत भू-सम्पत्ति तुम्हारे, तुम्हारे पुत्रों और उत्तराधिकारियोंके पास बनी रहने दी जायगी।"

इस तरह, मराठा दरबारसे इनाम और जागीरें प्रदान करनेवाले पत्र एवं सनदें लगातार भेजी जाने लगीं। उनका (पत्रों और सनदों का) मुख्य अभिप्राय यह था कि मराठोंके दल जहां तहां घूमते रहें, साम्राज्यके खजाने और प्रदेशोंको लूट लें और शत्रुको हर तरीकेसे परेशान करते रहें। ये सनदें और कुछ न थीं, केवल भावी पुरस्कारकी प्रतिज्ञाएं थीं, जिनके अनुसार मराठा सरदारोंको इस बातका विश्वास दिलाया गया था कि भारत के किसी भागमें वे जो भी प्रदेश जीत लेंगे वे उन्हींके समझे जायेंगे। कुछ समय तक इधर-उधर घूमनेवाले मराठोंके दल इस खेलसे लाभ उठाते रहे; वे रुपया उधार लेते, सेनाएं तैयार करते और दूरस्थ प्रदेशों पर चढ़ाई

कर देते। इस प्रक्रिया से बंक और लड़ाईके व्यापारको अचानक प्रेरणा मिल गयी। मैं आपके सम्मुख केवल एक उदाहरण देता हूं। रामचन्द्र पंत, जो राजारामके महामात्य—(महान् अमात्य) थे, एक पत्रमें अपने स्वामीसे एक पतांकरकी सेवाएं प्राप्त करनेकी सिफ़ारिश करते हैं। वह पत्र इस प्रकार है: "इन पतांकरोंके पास वंश-परम्परागत «वतन» है। उन्होंने ५,००० सैनिक इकट्ठा करनेका वचन दिया है और उसके बाद वे पंच सहस्री कहे जायेंगे। यह राज्य देवतायों, मराठों और ब्राह्मणोंका है। शत्रुकी सेनाओंको कुचलनेमें पतांकरोंको बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। इस कामके लिए उन्होंने अपने पास जो कुछ था वह तो खर्च कर ही दिया, पर उसके अलावा तमाम रुपया कर्ज लिया है। अतः उनके त्यागके लिए उचित पुरस्कार मिलना ही चाहिए, और इसीलिए हम «इनाम» के तौर पर आगे दिये हुए १२ गांव स्थायी रूपसे दे देंगे।" उस समयके मराठा प्रशासकों के सम्मुख इस तरहके «इनामों» और पुरस्कारोंके लिए हजारों प्रार्थनापत्र आने लगे। वे विशेष-रूप से छत्रपतिका ध्यान, उनकी पंचमुखी सेवा की ओर आकर्षित करते हैं। उनमें लिखा है: (१) "हमलोग मुगलोंकी ओर नहीं मिल गये; (२) हमलोग किसी न किसी तरहसे रांजीका काम चला रहे हैं; (३) हम सरकारको लगान देते हैं; (४) हमलोगोंने डाकुओं और लुटेरोंसे देशकी रक्षा करनेके लिए बड़ी-बड़ी फ़ौजें रख छोड़ी हैं; और इसके अलावा (५) हम अपनी जानको बाजी लगाकर छत्रपतिकी लड़ाइयां लड़ते हैं।" इतना ही नहीं, वे उन प्रलोभनोंको दुहराते भी हैं जो सम्राट् की ओरसे उन्हें दिये गये थे, और अपने स्वामीके सामने इस बातकी मांग पेश करते हैं कि वह उनको कुछ और दें। वे कहते हैं: "हम आप ही के भाई-बन्द हैं। हमारी हालत कम से कम उन लोगोंसे बदतर तो न होनी चाहिए जो (आपको छोड़कर) चले जाते हैं और उससे (सम्राट् से) बढ़िया-बढ़िया इनाम पाते हैं।" इस तरह हम स्पष्ट रूपसे देख लेते हैं कि जागीरको वह प्रणाली तथा सैनिक «सरंजाम», जिसे शिवाजी ने बड़ी कठोरता के साथ दबा रखा था, किस प्रकार पुनर्जीवित हो उठे; और दक्षिणमें होनेवाले सम्राट्के दीर्घकालीन युद्धों तथा उनसे पैदा होनेवाली गड़बड़ीके युगमें किस प्रकार उसकी जड़ें गहराई तक पहुंच गयीं। वास्तवमें अविवेकपूर्ण ढंगसे असंख्य इनाम दिये जानेके कारण इतनी ज्यादा गड़बड़ी पैदा हो गयी थी कि जब राजाराम जिन्जी से सतारा लौटकर आया तो उसे मालूम हुआ कि एक जिलेके एक ही समयमें कई हकदार थे। इसीलिए उसको एक विशेष न्यायालयकी स्थापना करनी पड़ी जो

« वतनों » की जमीनके सारे हक़ोंकी जांच करके उनको ठीक-ठाक कर सकें, और कुछ निश्चित सिद्धान्तोंके अनुसार उनका «हकीकत» रहन अथवा उनकी पुष्टि करनी पड़ी। जब १७०० ई० में राजाराम की मृत्यु हो गयी, और अगले कुछ वर्षों तक उसकी रानी ताराबाई ने शासनका काम संभाला तब उसने इस बातकी पूरी कोशिश की कि नये «सरंजाम» प्रदान करनेकी प्रथा बन्द कर दी जाय और जो सरंजाम दिये जा चुके थे उनमें से भी कुछ काट दिये जाय। वह और उसके सलाहकार इस बातसे पूर्णतया भभिज्ञ थे कि शिवाजी के स्वास्थ्यप्रद नियमोंसे विचलित होनेके कारण राज्य किस तरह विनाशके गर्तकी ओर बढ़ता चला जा रहा था, परन्तु आत्म-रक्षा के लिए तथा परिस्थितियोंकी विषमता के कारण वे उस प्रथा को बन्द करनेमें असमर्थ थे जो वर्षोंसे प्रचलित होनेके कारण दृढ़ हो गयी थी।

१४. मौलिक उद्देश्य से विमुख होना.

शीघ्र ही, इन जागीरदारों को अपने वशमें रखना और उनसे अनुशासन तथा सेवा प्राप्त करना केन्द्रीय सरकार के लिए बड़ा कठिन हो गया। वे अपने क्षेत्र के अन्तर्गत इनाम के रूप में मिली हुई अपनी जमीनें तक जिसे चाहते उसे दे डालते थे। मैं यहां पर उन सनदोंका एक नमूना पेश करता हूं जो छत्रपतिकी ओरसे उन आवेदन-पत्रोंके जवाब में जारी की जाती थीं, जिनमें «इनामों» की जोरदार मांग होती थी। इस तरह के आवेदन-पत्र लगातार आते रहते थे। वे इस प्रकार हैं —

"इस-इस स्थान पर तुम हिज हाईनेस छत्रपतिके पास यह प्रार्थना लेकर आये थे कि तुम्हारे पूर्वज बहुत दिनोंतक बराबर राज्यकी सेवा करते रहे थे, और अब तुम स्वयं भी अविरत सचाई के साथ सदैव उसकी सेवा करना चाहते हो; तुम्हारे पास एक बड़ा परिवार है, और हिज हाईनेस को कृपा करके उसके (परिवार के) भरण-पोषण की व्यवस्था करनी चाहिए। तुम्हारी इस प्रार्थना पर दयापूर्ण दृष्टि से विचार करके, हिज हाईनेस ने यह यह गांव «इनाम» के तौर पर तुमको, तुम्हारे वारिसों और उत्तराधिकारियों को स्थायी रूप से देने की कृपा की है। हम शपथ लेकर अपने सब उत्तराधिकारियों को इस बात का आदेश देते हैं कि यह इनाम वापस न लिया जाय"। प्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार की प्रार्थनाओं का अर्थ है, कि पहले जो कुछ विशिष्ट अनवरत एवं सच्ची सेवा के लिए दिया जाता था, वही बाद को उत्तराधिकारियों-द्वारा केवल इसलिए मांगा जाने लगा कि वे अपने बड़े से परिवार को चला सकें और उसके (परिवार के) वे निकम्मे

पड़ता। इसलिए यह समझ कर कि उस आदर्शको कार्यरूपमें परिणत करनेका उप-युक्त समय आ गया है, औरंगजेब की मृत्यु हो जाने पर सर्दार लोग शाहू के दर्बारमें जमा हुए। सबने मिलकर सलाह की, और शाहूकी आज्ञा से विजयकी योजनाएं बनायी, विभिन्न कार्यकर्ताओंके बीच क्रिया-क्षेत्रों का विभाजन किया, और किसी स्पष्ट आयोजन अथवा सबको निर्दिष्ट करने या एक सूत्रमें बांध कर रखने वाली नियमावली के बिना ही, अपने अपने मिशनके लिए चल पड़े। विचार यह था कि सैनिक नियंत्रणके लिए एक केन्द्र चुन लिया जाय, और वहां पर दृढ़ पारिवारिक रुचियोंके सहित स्थायी रूपसे मराठों की बस्तियां बसा दी जाय। यह एक ऐसा तरीका था जिसकी वजहसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर देश भरमें मराठों की छोटी-छोटी राजधानियां बन गयीं। हर एकमें एक दीवार या किला था, और सैनिक तथा लगान-सम्बन्धी कार्योंके लिए पर्याप्त व्यवस्था थी। प्रणालीकी मौलिक धारणा एवं रूपरेखा में किसी प्रकारके अन्तर्वर्ती दोष न थे। यदि केन्द्रीय सरकारकी ओरसे पर्याप्त नियंत्रणकी व्यवस्था होती और काम करने वालोंमें आज्ञा-पालन की प्रवृत्तिका अभाव न होता, तो यह प्रणाली सफल होती। सच तो यह है कि जब तक केन्द्रीय सरकार दृढ़ रही, और जब तक विशिष्ट संगठन एवं युद्ध-सामग्री से युक्त योरोपीय शक्तियोंके साथ किसी प्रकारकी स्पर्धा न रही, तब तक यह प्रणाली सन्तोषजनक ढंगसे काम करती भी रही।

इस प्रकार «सरंजामी» प्रथा ने सतारा और पूना से बाहरके तमाम केन्द्रों तक जानेवाली अच्छी सैनिक सड़कोंके अभावको पूर्ण कर दिया। पेशवाओंके लिए थोड़े से समयमें और अपने अल्प आय-साधनों के साथ, इस तरहके मार्ग बनवाना सम्भव न था। चढ़ाई, या पारिभाषिक शब्दोंमें जिसे «मुलुकगीरी» कहते हैं, आरम्भ करनेके पहले ही से सर्दारोंने उन प्रदेशोंमें जिनके ऊपर वे चढ़ाई* करनेवाले थे, जागीरोंके लिए सनदें प्राप्त करनेकी चेष्टा की। शाहू के आगमनसे स्थितिमें कोई सुधार न हो पाया। पेशवाओंने पुराने मंत्रियों और शिवाजी के समयके सर्दारोंको अपना आज्ञा-कारी बनानेकी चेष्टा तो जरूर की, लेकिन इस कामको पूरा करनेके लिए उन्हें अपने लिए नये सर्दार बनाने पड़े, जैसे सिन्धिया और होल्कर। पर बादको इन्होंने अपने पूर्वपुरुषोंका अनुकरण किया और अब उनकी अपनी बारी आई तब वे भी दुर्दम पेशवाओं के नियंत्रणका विरोध करने लगे। यदि पेशवा लोगोंने और अधिक कठोर अनुशासन

* एस० सी० साहित्य V. ७६७ देखिए।

सादनेकी चेष्टा की होती, तो उन लोगोंने जो कुछ कर लिया वह भी न कर पाते। वास्तवमें, केन्द्रीय मुग़ल सरकारके कमज़ोर हो जानेके कारण १८ वीं सदीके भारतने अनेक महात्वाकांक्षी तथा मारे-मारे फिरनेवाले व्यक्तियोंको विशेष रूपसे अनुकूल क्षेत्र प्रदान किया। उत्तरमें सम्राट्के प्रान्तीय सूबेदार, जैसे सफदर जंग, अलीवर्दीखां, निज़ामुल्मुल्क, विभिन्न बुन्देला राजा और सिख सरदार, जाट और रुहेला सरदार, और दक्षिणमें अर्काट, सवानूर (Savanur), कडप्पा, और करनूल (Karnool) के नवाब और मैसूर, बेदनूर और दूसरी जगहोंके शासक जो थोड़े बहुत शक्तिशाली थे, इन सभी ने, अपने-अपने ढंगसे स्वतंत्र शक्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा की, और अपनेसे श्रेष्ठतर शक्तिके सम्मुख केवल उतने ही दिनों तक सिर झुकाया जब तकके लिए उन्हें मजबूरन ऐसा करना पड़ा। मराठा सेनाएं अवसर उनको दबा देतीं, पर ज्योंही सेनाएं उनकी सीमाओंसे हट जातीं, त्यों ही उनकी पहलेवाली क्रियाएं फिर आरम्भ हो जातीं। पेशवा को सालाना कर वसूल करनेके लिए हर साल पूरे भारतवर्ष में सेनाएं भेजनी पड़ती थीं; इस प्रकार यह मानना पड़ता है कि पेशवा लोग जिस «हिन्दू-पद-पादशाही» की स्थापना करना चाहते थे, उसके नाम बड़े, पर दर्शन थोड़े थे।

लौट आया। यह वह स्कीम थी जिसका प्रायोजन वृद्ध सम्राट् मराठों के बीच फूट डालने के उद्देश्य से बहुत पहले ही कर चुका था। मराठा सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसे अपने चचेरे भाई शिवाजी और अपनी चतुर चाची ताराबाई के साथ लड़ना पड़ा। इस भयसे कि कहीं शाहू सम्राट् की अधीनता छोड़ कर अपने को स्वतंत्र न घोषित कर बैठे, उसकी माता, पत्नियां और चचेरे भाई बन्धक के रूपमें दिल्ली ले जाये गये थे। सच तो यह है कि जब उसने इस बातकी प्रतिज्ञा की कि वह सर्दव दिल्लीके अधीन रहकर उसके प्रति राजभक्ति दिखाता रहेगा और आवश्यकता पड़ने पर सम्राट् की आज्ञाओंका पालन करेगा, तभी उसे मुक्ति मिली और उसे नर्मदा पार अपने देशको लौट जाने की आज्ञा मिली।

शाहू स्वभाव से धर्म-भीरु और ईश्वरसे डरनेवाला था, अतः उसने सचाईके साथ अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, और इसके बाद जब कभी उसके सलाहकारोंने मुग़ल साम्राज्यके विरुद्ध खुल्लमखुल्ला लड़ाई छेड़ने का लालच दिखाया या उससे प्रार्थना की तो उसने दृढ़ताके साथ सबका अवरोध किया। उसके पितामह शिवाजीने डंके की चोट पर मुसलमानी शासन का विरोध करके अपना जीवन-कार्य आरम्भ किया था, और इस बातकी पूरी आशा की थी कि उसका दमन करके वह अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर लेगा। शाहू ने दूसरी ओर, इस स्थिर सिद्धान्त को बिल्कुल ही छोड़ दिया, और यहां तक कि उस भयंकर युद्धको भी भुला बैठा जो उसके पिता और चाचा ने सम्राट् के साथ पचीस वर्षों तक लड़ा था। उसने अपने सेनापतियों तथा मन्त्रियों को आदेश दिया कि वे केन्द्रीय मुग़ल सत्ता को हानि पहुंचाये बिना, अपने लिए नये प्रभाव एवं क्रिया-क्षेत्र स्थापित कर लें। यह असम्भव कार्य शाहू के पेशवाओंके कंधे पर आ पड़ा, जिन्होंने इस बातकी भरसक चेष्टा की कि एक ओर वे शाहू को आराम के साधन जुटाए, और दूसरी ओर अपनी स्थितिको परिवर्तित दशाओं में, शिवाजी के आदर्श को पूर्ण करने का अधिक से अधिक प्रयत्न करते हुए यथाशक्ति «हिन्दू-पद-पादशाही» का कार्य करते रहें। वास्तव में सम्राट् फर्रुखसियर को विपद्-कालमें सहायता करनेकी उत्कट इच्छासे प्रेरित होकर ही शाहू ने पेशवा बालाजी विश्वनाथ को १७१८ ई० में सबसे पहिली बार सेना सहित दिल्ली रवाना किया था। अगर यह सवाल उठता है कि निज़ामको एक मुस्तकिल और खतरनाक पड़ोसी की तरह से क्यों छोड़ दिया गया, और दक्षिणमें पेशवाओंने उसे निश्चित रूपसे पराजित करके बिल्कुल शक्तिहीन क्यों नहीं बना दिया। इस प्रकार की अव्यवस्था को समझनेके

लिए पेशवा की इस अनिश्चित स्थिति को हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए। सचमुच यह एक विचित्र-सी बात लगती है कि जब पेशवाओं की सेनाएं अटक और मैसूर जैसे दूरवर्ती स्थानों को विजय कर रही थीं, तो घरसे बिल्कुल पास अहमदनगर, त्र्यम्बक और जुनार जैसी जगहों में मुसलमान शासक निर्विघ्न होकर राज्य कर रहे थे। आजकल के राजनैतिक सम्भाषणमें, शाहू को उसकी ईश्वरसे डरने वाली, दयापूर्ण प्रकृतिके कारण अहिंसाका प्रवर्तक कहना अनुचित न होगा। उसीकी (अहिंसा) शक्तिसे, मराठा राज्यका विस्तार और शक्ति दोनों ही तेजीके साथ बढ़ गये। उसकी मृत्यु के बाद यह नीति ऐसी पलट गयी कि उत्तरी भारतके मुसलमानोंकी तरफसे एक जबर्दस्त विरोध उठ खड़ा हुआ, जिसका अन्त पानीपत की भयंकर विपत्तिके रूप में हुआ।

२. मराठाराज्यका विभाजन—पेशवा लोग उत्तर की ओर क्यों निहारते थे.

सम्राट् को आशा थी कि शाहू के कारावाससे मुक्त होते ही दक्षिणमें घरेलू युद्ध प्रारम्भ हो जायगा और इस तरहसे अप्रत्यक्ष रूपमें, मराठे आपसमें लड़-भिड़ कर शक्तिहीन हो जायगे। पर ऐसा न हुआ। शाहू ने इस बुद्धिमानीके साथ घरेलू युद्ध रोक दिया कि देखते ही बनता था। उसने जनवरी, १७०८ में अपने राज्याभिषेकके तुरन्त बाद, जितना भी राज्य उस समय था, उसका आधा अपने चचेरे भाई शिवाजी के लिए अर्पण कर दिया, यद्यपि ताराबाई पूरे ही पर अपने लड़केका अधिकार जताती थी। कारावाससे छूटनेके बाद दक्षिणमें शाहू की स्थिति पहले चार-पांच वर्षों तक बड़ी ही भयपूर्ण रही। ताराबाई ने उसको एक ठग घोषित कर दिया और दृढ़ता के साथ यह कहना प्रारम्भ किया कि शिवाजी महान् ने जिस राज्यकी स्थापना की थी, वह उसके (शिवाजी के) पुत्र सम्भाजी के हाथसे निकल गया था; उसके पति राजाराम ने एक बिल्कुल नया राज्य बनाया था, इसलिए क़ानूनी तौर पर वह पूरा का पूरा उसके लड़के को मिलना चाहिए। शाहू का उसके ऊपर कोई अधिकार नहीं है। तो भी शाहूने अपनी चाची और चचेरे भाई के साथ होनेवाले प्रथम संघर्ष में अद्भुत विशालता दिखायी। यह युद्ध लगभग चार वर्ष तक चलता रहा। अन्तमें राजाराम के द्वितीय पुत्र सम्भाजी ने उसको और उसके पुत्र को (शिवाजी को) बन्दी बना लिया। बाद को शाहूने सम्भाजी के साथ सन्धि कर ली। उसने राज्यके दो भाग कर लिये; कृष्णानदी के दक्षिणका राज्य उसने सम्भाजी को दे दिया और उसके उत्तर का भाग

पहले बता चुका हूँ, जब शाहू सम्राट्‌के शिविरसे लौटकर आया और १७०७ के अन्त में सतारा पहुँचा, उस समय उसको भाग्यका सितारा गर्दिश में था। अधिकांश मराठा सर्दार ताराबाई की ओर थे, जो दृढ़ता के साथ शाहूके हक़ोंका विरोध करती थी। सेनापति धनजी जाधव अकेले शाहूके तरफ़दार थे, पर थोड़े ही दिन बाद उनकी मृत्यु हो जानेके कारण शाहू का पक्ष फिर कमज़ोर पड़ गया, और धनजी के पुत्र चन्द्रसेन जाधवके कर्तव्यविमुख हो जानेसे हालत और बिगड़ गयी। ऐसी दशाओं के बीच यदि बालाजी विश्वनाथ ने शाहू को समय पर तथा सच्ची सहायता न दी होती तो वह अपनी स्थितिको बनाये रखने में कदापि समर्थ न होता। इसीलिए उसने उन सेवाओंके पारितोषिक के रूपमें बालाजी को पेशवा का पद प्रदान किया और १७१३ ई० में उस पद पर उसकी नियुक्ति हो गयी। बालाजी के सामने तीन काम थे—ताराबाई के साथ सहानुभूति रखनेवाले तथा शक्तिशाली सर्दारोंको अधिक से अधिक संख्या में शाहू की ओर मिलाकर उसका पक्ष मजबूत बनाना, शाहू के अधिकार में उस समय जो थोड़ेसे प्रदेश थे, उनमें शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करना और विभिन्न कलहकारी मराठा दलोंको किसी लाभदायक कार्य में लगाना। ये दल हाल ही में शाही फ़ौजोंके ऊपर विजय प्राप्त करके आये थे जिसके कारण वे उत्साह और उल्लाससे भरे हुए थे। घरेलू-युद्ध अभी चल रहा था। ऐसी दशामें उन्हें किसी समुचित कार्यमें न लगानेका मतलब यह था कि वे दो में से किसी एक पक्षका साथ पकड़ कर लड़ाईमें लग जांय और पूरे राष्ट्रको नष्ट कर डालें। इस प्रथम पेशवा की सेवाओं तथा कृतियोंको अभी तक इतिहासमें उचित स्थान नहीं प्राप्त हो सका और इसका कारण यह है कि उनके ऊपर अनुसन्धान कार्य अभी हाल ही में शुरू हुआ है। शाहू अपने एक पत्रमें उसके लिए «अतुल-पराक्रमी-सेवक» का प्रयोग करता है। इससे इस बातका पता चलता है कि शाहू ने पेशवा का पद, सेनापतिके पास काम करनेवाले एक मामूली क्लर्क के ऊपर नहीं लाद दिया, वरन् उस पदसे एक ऐसे योग्य व्यक्तिको विभूषित किया जिसके गुणोंकी परीक्षा पूरे पांच वर्ष तक हो चुकी थी और जिसके साथ उसकी बरसों पुरानी निजी जान-पहचान थी। अब तो यह है कि यद्यपि इस प्रथम पेशवा के जीवन और कार्यके सम्बन्धमें अभी तक पर्याप्त बातें मालूम नहीं हो सकी हैं, तथापि हमारे पास दृढ़तापूर्वक यह बात स्वीकार करनेके लिए काफ़ी प्रमाण हैं कि उसके पिता और पितामह शिवाजी की सेवामें रह चुके थे। लम्बे अरसे तक चलनेवाले मुग़ल-मराठा संघर्ष ने उसे एक अनुभवी व्यक्ति बना

दिया था, क्योंकि उस बीचमें उसे तरह-तरह के अनुभव हुए थे, और इसीके फल-स्वरूप वह उन परिस्थितियों तथा उस स्थितिको समझनेकी अद्भुत शक्ति रखता था जिनके बीच शाहू और पूरी मराठा जाति, औरंगजेब की मृत्युके उपरान्त, आ पड़ी थी। उसने उस हिन्दूसाम्राज्यका निर्माण-कार्य पूर्ण करने के लिए, जिसे शिवाजी महान् ने अपना लक्ष्य बना रखा था, समस्त प्राप्य साधनोंका प्रयोग करने में अपूर्व दूरदर्शिता एवं राजनीतिज्ञता का भी परिचय दिया। शाहू के पहुंचनेके दो वर्षोंके समयमें शिवाजी का वह लक्ष्य प्रायः चूर-चूर हो चुका था। बालाजी को उत्तरकी ओर बढ़ना था, क्योंकि दक्षिणकी ओर उसका मार्ग ताराबाई के राज्यके स्वतन्त्र अस्तित्वके कारण स्थायी रूपसे बन्द हो चुका था। बालाजी ने देखा कि युद्धकी तमाम सामग्री पूरे देश भरमें छितरी हुई पड़ी है। मराठा दलोंके अनेक नेता बहुत दिनोंसे मालवा, गुजरात और बरार जैसे सुदूरवर्ती भागों पर आक्रमण किया करते थे और अधिकतर उनमें सफल ही होते थे। उनमें महत्वाकांक्षा भी थी और क्षमता भी। बस उन्हें दो चीजोंकी जरूरत थी—एक तो उनकी क्रियाओंके लिए क्षेत्र और दूसरे उनका संचालन करने के लिए एक नेता। उनकी महत्वाकांक्षी प्रवृत्तिको रोक कर रखना बूतेके बाहरकी बात थी। शाहू की केन्द्रीय सत्ता स्वयं इतनी कमजोर थी कि वह इन मराठा सर्दारोंमें से किसी एकका भी मुकाबला न कर सकती थी,—जैसे उदाहरणके लिए, कोलाबा के कान्होजी आंगरे, कान्होजी भोंसले, खाण्डेराव दभाडे या चन्द्रसेन जाधव. इनमें से हर एक अलग-अलग कमजोर शाहू से कहीं अधिक शक्तिशाली था। इसका एकमात्र प्रतिकार था, एक सामान्य उद्देश्यके लिए पराक्रमी युद्ध-सामग्रीका उपयोग करना और उसे एक सम्बद्ध रूप देना, अर्थात् अपने-अपने साधनों तथा कार्यक्षमताके अनुसार मराठा-शक्ति एवं प्रभावका विस्तार करके एक संघका निर्माण करना, जिसमें सभी अपने-अपने भाग्यके निर्णायक बन सकें। इसीलिए जब फर्रुखसियर के सैयद मन्त्रियों ने शाहू से सहायता की अपील की, तो बालाजी तुरन्त सब कुछ समझ गया और उसने थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया, जिसका अनुभव शायद उस समय वे लोग शायद ही कर पाये हों जिन्होंने उसमें भाग लिया था, तथापि उसके कारण भारतके दूरवर्ती भागोंमें मराठा शक्तिके विस्तारके लिए एक अपूर्व अवसर प्राप्त हो गया। बालाजी के पुत्र, बाजीराव और चिमनाजी, केवल सलाह-मशविरा करने या काम करने के लिए ही सदैव उसके साथ-साथ नहीं रहते थे, वरन् उन कठिनाइयों तथा मुसीबतोंमें भी उसका साथ देते थे, जो इस साहसपूर्ण

एवं विस्तृत योजनाके अन्तर्गत सम्मिलित थीं। इस बातको पूर्णतया समझ लेनेके लिए हमें पहले स्थितिकी कुछ और विशेषताएं जान लेनी चाहिए।

४. सम्राट्के साथ असहयोग करनेके लिए राजपूतोंका समझौता—शंकरजी मल्हार.

भारतीय इतिहासके विद्यार्थी इस बातसे भलीभांति परिचित हैं कि औरंगजेब की मृत्यु ने विशाल मुगल साम्राज्यको कितनी तेजीके साथ छिन्न-भिन्न कर दिया था। हमें सावधानीके साथ इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि कौन-कौन सी पुरानी और नई शक्तियां उस समयकी परिस्थितिसे लाभ उठाने के लिए तैयार थीं। उदाहरणके लिए, सिख लोग एक प्रमुख शक्तिके रूपमें आगे बढ़ रहे थे। गुरु गोविन्दसिंह के समयमें औरंगजेब ने इनके ऊपर जो धार्मिक अत्याचार किये थे, उनके कारण इनकी क्रियाओं ने सैनिक रूप धारण कर लिया था और इस समयसे लेकर अठारहवीं और उन्नीसवीं शतीके पूर्वार्ध तक बराबर पंजाब के सीमा प्रान्तका भाग्य इन बहादुर लोगों अर्थात् सिखोंके क्रिया-कलापोंके साथ किसी न किसी रूपमें जुड़ा रहा। यहां पर मुझे कुछ एक प्रान्तीय गवर्नरोंकी महत्वाकांक्षी योजनाओंके विषयमें विस्तारपूर्वक बतानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इस सिलसिलेमें दक्षिणके निजाम या बंगाल और अवधके नवाब जैसे प्रान्तीय शासकोंके नाम लिये जा सकते हैं। जाट और रुहेले भी उस अशान्तिमय युगमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए बेचैन थे। मुगल साम्राज्य के खण्ड-खण्ड कर देनेवाले इन समस्त तत्त्वोंमें से जो सबसे महत्वपूर्ण है, उसकी ओर उस युगके लेखकोंका ध्यान ही नहीं गया। यहां पर मेरा तात्पर्य है—विभिन्न राजपूत राजाओं द्वारा मुगलोंकी अधिपति शक्तिके* प्रति अपनाये हुए रुख से। टॉड ने विस्तार पूर्वक स्थितिका वर्णन किया है। परन्तु उस समय न तो उचित रिकार्ड प्राप्य थे और न ही लोगोंमें उचित ऐतिहासिक प्रवृत्ति पैदा हुई थी। ऐसी अवस्थामें विषयका पूर्ण समाधान न हो पाया था। औरंगजेब ने राजपूत राजाओं को—वही राजपूत राजा जो एक समयमें मुगल-राज्यके स्तम्भ थे—अपना शत्रु बना लेनेमें कोई कोरकसर न रखी थी। पर वे चुपचाप उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहे जब वृद्ध सम्राट्के मरते ही वे बदला लेनेका अवसर प्राप्त कर सकेंगे। १७१०

* विषय को और अधिक स्पष्ट रूपमें समझनेके लिए "मालवा इन ट्रांजिशन" का अध्याय ३, वर्ग ४ देखिए।

६० में वे अजमेर के निकट पुष्कर झीलके तट पर धार्मिक सभाके रूपमें एकत्र हुए और विचार-विमर्शके बाद सबने मिलकर खुल्लमखुल्ला मुगल सम्राट्की अधीनता से अपने को मुक्त कर लिया, और संयुक्त रूपसे इस बातकी शपथ ली कि वे मुगल राजघरानेमें अपनी बेटियोंका ब्याह न करेंगे। उन्होंने यह भी निश्चित किया कि यदि सम्राट् उनमें से किसी को उस समझौते को तोड़ने के लिए विवश करेगा जिसे उन्होंने उस समय पूरी तौर पर, काफी समय तक विचार कर लेनेके बाद किया था तो वे उसके विरुद्ध खुल्लमखुल्ला लड़ाई छेड़ देंगे। यद्यपि राजपूत राजाओंकी यह शान १८वीं शताब्दी भर उनके लिए अनन्त दुःख, पीड़ा और नाशका प्रत्यक्ष कारण बनी रही, और १९वीं शतीके प्रारम्भिक भागमें अंगरेजोंके सैनिक हस्तक्षेपसे ही उन्हें अन्तमें इनसे छुटकारा मिला, तो भी जहां तक हमारे प्रस्तुत उद्देश्यका, अर्थात् ऐतिहासिक विकासके विश्लेषणका सम्बन्ध है, उनकी यह नीति १८वीं शताब्दीके प्रारम्भिक भागमें भारतकी राजनैतिक स्थितिका एक महत्वपूर्ण अंग बनी रही।

शाही शिविर में दीर्घकाल तक बन्दी रहने के कारण शाहू को राजपूतों की इस भावना का ठीक-ठीक अन्दाज लगानेका मौका मिल गया था, क्योंकि वहां पर तमाम राजपूत राजा सम्राट् की सेवा में थे। उसने उनमें से कुछ को सहानुभूति प्राप्त कर ली थी, और मालवा में जब उसे कारावाससे मुक्ति मिली थी तब वे लोग उसको मित्र-भावसे विदा करने आये थे। शिवाजी की जीवन-वृत्तिसे भली भांति परिचित होनेके कारण शायद उन्होंने एक साथ उन उपायों पर विचार किया जो हिन्दुओंके पुनर्जीवनके लिए सहयोगके साथ, दक्षिणमें शाहू और उत्तरमें राजपूतों द्वारा किये जा सकते थे। ऐसा जान पड़ता है कि इस नये आन्दोलनके अगुआ जयपुर के राजा सवाई जयसिंह थे, क्योंकि १७४३ में जब उनकी मृत्यु हुई उस समय तक भी वह बराबर मराठों के प्रयत्नोंके प्रति मित्रभाव रखते रहे थे। निस्सन्देह बादको कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुईं, जिनके कारण मराठे और राजपूत एक दूसरेसे बिल्कुल अलग हो गये, पर हमको इस बातका विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिए कि शाहूके जीवन कालमें दोनों बिल्कुल एक-मत थे और उनके बीच मित्र भाव था; दोनों एक ही राष्ट्रीय तथा धार्मिक अभिलाषा से प्रेरित थे। हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि इसीलिए जब प्रथम पेशवा बालाजी और उसके बाद उसके सैनिक पुत्र बाजीराव प्रथम ने भारतके लिए एक हिन्दू-साम्राज्यका निर्माण करनेके लिए अपना कार्य आरम्भ किया, तब बड़े-बड़े राजपूत राजाओंने उसके प्रयासोंका पूर्ण समर्थन किया। इतना ही नहीं,

उन्होंने दीर्घकाल तक भयंकर अत्याचारोंसे पीड़ित अपनी राष्ट्रीय रुचियोंके उद्धारक के रूपमें, बाजीराव की जय-जयकार भी मनाई। चाहे कुछ भी हो, यहां पर तो इतना ही ध्यानमें रख लेना काफी है कि जब शाहू और उसके प्रथम पेशवा ने उठती हुई मराठा शक्तिके भावी भाग्यको ढालनेका काम शुरू किया था, उस समय मराठों और राजपूतोंके बीच सम्मानपूर्ण सद्भावना थी। मुझे विश्वास है कि भारतीय इतिहासमें बढ़ते हुए अनुसन्धान कार्यके साथ-साथ, जिसमें स्व० गौरीशंकर ओझा जैसे दूसरे विद्वानोंने योगदान दिया है, राजपूत रिकार्डोंसे प्राप्त नई सामग्रियोंसे, वे बातें प्रमाणित होंगी जिनके ऊपर हाल ही में मराठा तथा अन्य रिकार्डोंने प्रकाश डाला है।

इस समय दृश्यके पीछे एक अपूर्व व्यक्तित्व कार्य करता हुआ दिखाई देता है। वह व्यक्ति था—शंकरजी मल्हार राव, जो किसी समयमें राजाराम के पास जिंजी में «सचिव» या अर्थमंत्रीके रूपमें नौकर था। किसी बात पर मतभेद हो जानेके कारण, जिसका कोई प्रामाणिक रिकार्ड नहीं मिलता, वह सन्यासी हो गया और बनारस चला गया, जहां पर उसने काफी लम्बे अरसे तक निवास किया। वह चतुर और कुशल तो था ही, इसलिए उसने उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत—दोनों की ही स्थितिको स्पष्ट रूपसे समझ लिया था। वह औरंगजेब के शिविरके लोगों और वहां के मामलों से परिचित होनेके साथ-साथ शाहू के वातावरणसे भी परिचित था। बनारस में रहते हुए भी वह अपनी आंखों और कानोंका पूर्ण उपयोग करता था। उसे यह अनुभव होता था कि उसके सामने एक जबरदस्त मिशन है जो उसे दूसरे कार्य क्षेत्रमें जाने के लिए आवाहन कर रहा था। उसने सैयद लोगोंके पास सलाहकारके रूपमें नौकरी कर ली और १७१६ के लगभग सैयद हुसेनअली के शिविरमें, फिरसे दक्षिणमें प्रवेश किया। उस समय सैयद हुसेनअली दक्षिणका सूबेदार नियुक्त होकर गया था। वह शंकर जी मल्हारराव ही था जिसके जरिये हुसेनअली ने शाहू के पास सन्धिका प्रस्ताव भेजा था। शंकरजी सैयद का प्रतिनिधि होकर सतारा आया, शाहू के मन्त्रियोंसे सलाह-मशविरा करके पारस्परिक सहयोगकी योजनायें बनाईं, और अपने मालिक सैयद के जरिये मराठों और सम्राट् के बीच एक रचनात्मक सन्धिका प्रस्ताव रखा। उस तरह उसने अन्तमें शाहू को तीन बड़ी-बड़ी सनदें दिला दीं—स्वराज्यकी सनद, चौथकी सनद, और सरदेशमुखीकी सनद। पहले तो पेशवा से, इन दोनोंको प्रतिज्ञा करा दी गई और बादको दिल्लीमें १७१६ ई०में सम्राट् फर्रुखसियर द्वारा इसकी पुष्टि

कर दी गई। इस प्रकार यदि हम उन घटनाओंके विभिन्न सूत्रोंको, जो भारतके अलग-अलग भागोंमें घटित हो रही थी, एक साथ इकट्ठा कर लें, तो हमारे लिए उन गुप्त प्रभावोंका मूल्यांकन करना सहज हो जायगा जो शाहू और उसके प्रथम पेशवा के कार्य को निश्चित कर रहे थे। उनकी सहायतासे हम मराठोंकी उस राज्य-पद्धति की यथार्थ कल्पना भी कर सकेंगे, जिसे पेशवाओंने कायम किया था। इस व्याख्यासे, बिना किसी कठिनाईके हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मराठोंका जो संविधान बना वह कोई बिल्कुल नए ढंगकी चीज न था, जिसका पहले सैद्धान्तिक रूपमें अनुमान लगाया जाता और तब उसे कार्यान्वित किया जाता। पर साथ ही साथ वह योजना या पूर्व-ध्यानसे रहित, केवल-मात्र एक आकस्मिक संचय या घटना भी न था, जैसा कि बार-बार दृढ़ताके साथ कहा जाता है। पूर्व-कल्पित योजनाके बिना किसी प्रकारकी मानव-रचना सम्भव नहीं। मराठा-शासन क्षण-भरकी इच्छासे बिल्कुल अचानक ही न बन गया होगा। उन्होंने उपस्थित सामग्रियोंकी सहायता से पुरानी नींवों पर अपनी नीति का निर्माण किया, और उसे सफल बनानेके लिए उन सामग्रियों का यथासम्भव अधिक से अधिक प्रयोग किया। आगे चलकर जहां कहीं आवश्यकता पड़ी, वहां सुविधा और सामर्थ्यके अनुसार, उसको (नीति का) सहारा दिया गया और उसका विस्तार किया गया। उस नीतिका जो कुछ परिणाम हुआ उससे हम परिचित ही हैं। आमतौरसे प्रायः सभी जगह राजनीतिमें यही होता है।

कहा जाता है कि मराठोंके मुंह सदा उत्तरकी ही ओर रहते थे। पेशवाओंके महत्त्वका सिंहद्वार सतरमुख है। यहीं पर (उत्तरमें) उन्होंने अपनी महत्वाकांक्षाओं को केन्द्रित कर रखा था। १७२६ ई० में बाजीराव ने गिरिधरबहादुर, दयाबहादुर और मुहम्मदखां बंगश के विरुद्ध जो महान् सफलताएँ प्राप्त की, उनसे सम्राट्, उसके दरबारियों तथा राजपूत राजाओंको ऐसा जबर्दस्त धक्का लगा कि सरकारकी ओर से मराठा सरदारोंकी यथार्थ शक्ति एवं इरादोंका पता लगानेके लिए राजदूत सतारा में मराठा राजाके पास विशेष रूपसे भेजे गये।

१. बाजीराव प्रथम की देदीप्यमान जीवनवृत्ति.

१७१३ ई० में पेशवा पद पर नियुक्त होनेके पूर्व बालाजी विश्वनाथ ने, दीर्घकाल तक उत्सुकताके साथ सम्राट् के साथ होने वाले मराठोंके संघर्षको ध्यानपूर्वक देखा था, उन मुख्य पात्रोंके मस्तोंका अध्ययन किया था जिन्होंने सफलताएँ प्राप्त की

प्राशंका न थी। दोनों शाही अमीर अपने स्वामीके लिए बहादुरीके साथ लड़ते हुए मारे गये और लूटका तमाम सामान विजेता के हाथ लगा। तीन महीने बाद बाजीराव गढ़ामंडला (Gadha Mandala) होता हुआ बुन्देलखण्ड पहुंचा, और यह सुनकर कि मुहम्मदखां बंगश ने राजा छत्रसालके ऊपर आक्रमण कर दिया है, आगे चल पड़ा और १७२९, अप्रैल के प्रारम्भमें जैतपुर के निकट एक युद्धमें उसे (मुहम्मदखां बंगशको) पूर्णतया परास्त किया। मुहम्मदखां का चचेरा भाई क़ईमखां (Qaim khan) लड़ाईका मैदान छोड़कर भाग गया। उसके भाई चिमनाजी ने मालवाके बाद गुजरात के ऊपर चढ़ाई कर दी, और इस प्रकार दोनों एक साथ मिलकर यमुना नदी तक मराठों का प्रभाव बढ़ाते रहे। दोनो भाई अपने स्वामी से अपनी सफल कृतियोंके लिए प्रशंसा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सतारा के लिए रवाना हो गये। इन द्रुतगामी और असाधारण सफलताओं ने हिन्दुस्तान भरमें पेशवा की प्रतिष्ठा एकदमसे स्थापित कर दी, और सम्राट्, उसके अधीनस्थ राजाओं तथा मित्रोंको स्पष्ट रूपसे यह पूर्वानुभव करा दिया कि उसके बाद वे मराठों से किस बातकी आशा कर सकते थे। सम्राट् तो पूरी तरह से ऐसा डर गया कि उसने तुरन्त सवाई जयसिंह को आज्ञा दी कि एक चतुर राजदूत सतारा में मराठा के राजदरबार में नियुक्त किया जाय। सम्राट् के आदेशानुसार दीपसिंह, बाग़सिंह और मंसाराम पुरोहित सतारा में शाहू से भेंट करने गये। उसके बाद अक्टूबर, १७३० में वे औरंगाबाद में निजामुल्मुल्क से मिले, और बाजीराव के पराक्रम, कार्यक्षमता और राजा शाहूकी स्थिति* की दृढ़ता के सम्बन्धमें सुविस्तृत रिपोर्ट दी। इस प्रकार बाजीराव की देदीप्यमान जीवनवृत्ति का प्रारम्भ १७२८ ई० में हुआ। उस समय से वह निरन्तर सफलताएँ प्राप्त करता रहा—कभी जंजीरा के विरुद्ध तो कभी सआदतखां और दूसरे शाही अमीरों के विरुद्ध। अन्तमें १७३७ में उसने दिल्ली के ऊपर अचानक आक्रमण कर दिया, और मुग़ल-साम्राज्य की राजधानी में रहनेवालों को भय से कंपाकर बिजली की नाईं आंखों से ओझल हो गया। अगले वर्ष के प्रारम्भ में उसने निज़ाम को भोपाल में एक बार फिरसे लड़नेके लिए बाध्य किया। अप्रैल, १७४० में नर्मदा के तट पर अकस्मात् मृत्यु का शिकार हो जाने के कारण उसके यौवन तथा तेजसे पूर्ण जीवन वृत्ति का अन्त हो गया और *उसके प्रारम्भ किये हुए अनेक कार्यों की उचित पूर्ति उसके योग्य पुत्र बालाजी राव* के लिए शेष रह गई।

* पी. डी. १०—१४

६. मराठा-विस्तार की क्रिया, उत्तर और दक्षिण के बीच लेन-देन.

मैं उन परिस्थितियों का सुविस्तृत वर्णन पहले ही कर चुका हूं जो औरंगजेब की मृत्युके समय उपस्थित थीं, और जिनके कारण मराठोंकी राजनीतिमें महान् परिवर्तन हुआ था। यद्यपि प्रारम्भमें शाहूके लिए सफल होनेकी ज्यादा गुंजाइश न थी, फिर भी थोड़े दिनों में वह एक उदार विचारोंवाला शासक सिद्ध हुआ—उस रूपमें जैसा कि समय की आवश्यकताओं के अनुसार उपयुक्त था। फलस्वरूप उसका साम्राज्य इतना अधिक बढ़ गया जितने की किसी को आशा न थी। उसकी सफलता के दो कारण थे—एक तो यह कि उसने मुसलमानों के प्रति अहिंसा की नीति का अनुसरण किया, और दूसरा यह कि उसके अपने परिवारमें कोई योग्य प्रतिद्वन्द्वी न था। उसकी चाची ताराबाई काफ़ी बुद्धिमान् और शक्तिशाली थी, पर स्त्री होनेके नाते उसे अनिवार्य रूपसे अपने अधीनस्थ लोगों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता था, जो बहुधा विश्वासघाती सिद्ध होते थे। उसका पुत्र शिवाजी मूर्ख था और उसका सौतेला लड़का सम्भाजी उससे (शिवाजी से) कुछ अधिक अच्छा न था। इसके अतिरिक्त, शाहू के पास संरक्षण प्राप्त करनेके लिए चाहे जो कोई भी जाता, उसको वह हर तरहकी आज़ादी देता और विस्तृत कार्य-क्षेत्र प्रदान करता। इस प्रकार संरक्षण देना शाहूको बड़ा प्रिय था। अधिकांश ऐतिहासिक परिवारों ने, जिनका मराठा इतिहासमें इतना अधिक वर्णन मिलता है, शाहूके प्रत्यक्ष प्रोत्साहनके ही कारण नाम पैदा किया। ऐसा करनेमें शाहूका कोई स्वार्थपूर्ण एवं तुच्छ उद्देश्य न होता था। वह योग्यता प्रदर्शित करनेवाले सभी व्यक्तियोंकी स्वतंत्रतापूर्वक पद-वृद्धि कर देता था। चूंकि शिवाजी सैनिक सेवा के लिए जमीन नहीं देता था, इसीलिए उसके समय का शायद ही कोई परिवार ऐसा हो जो «इनामों» का उपभोग कर रहा हो। परन्तु शिवाजी के बाद आनेवाले युगमें, सरंजामी प्रथा के अन्तर्गत, जिसके स्वरूपका सुविस्तृत वर्णन मैं पहले ही दे चुका हूं, देश भरमें साम्प्रदायिक सैनिक सेवा के लिए बड़ी गुंजाइश थी। चौथ वसूल करनेके बहाने मराठा-फ़ौजों को दूर-दूरके देशों पर चढ़ाई करनेका मौक़ा मिल जाता था। कष्ट और भयके उन दिनोंमें मराठों से सहायता प्राप्त करनेके लिए आसानीसे प्रार्थना की जा सकती थी।

महाराष्ट्र से बाहर जाने वाले नये रंगरूटोंके लिए अधिक शिक्षा या साज-सामान की ज़रूरत न थी। पढ़ना, लिखना और व्यावहारिक गणितका ज्ञान प्राप्त कर लेना ही

काफी था, और ये सारी चीजें आसानीसे सीखी जा सकती थीं। दक्षिणके सस्ते टट्टुओं ने घुड़सवारी करना एक पेशा बना दिया था। छोटेसे लेकर बड़े तक सभीके लिए यह विनोद का साधन था। स्त्रियां भी उससे परे न थी। कारण, उन दिनों करीब-करीब हर स्त्रीके लिए घुड़सवारी करना और वह भी अच्छी तरह से करना अनिवार्य था, क्योंकि खतरेके समय प्राण और सुरक्षा के लिए वह एक आवश्यक गुण था। फैनी पार्क (Fanny Park)नामकी एक अंगरेज महिला ने जिसे १८३५ ई० में बैजाबाई सिन्दे (Baijabai Sinde) (दौलतराव की पत्नी) ने अपने यहां निमंत्रित किया था, अपनी आत्मकथा में उत्तम घुड़सवारी तथा उन दूसरे खेलोंका सजीव वर्णन दिया है जिनमें उस कालकी मराठा नारियों ने इतनी अधिक कुशलता प्राप्त कर रखी थी। १२ या १४ वर्षके नवयुवक, जो हम लोगोंके जमानेमें अपनी पाठशाला-शिक्षा तक नहीं समाप्त कर पाते, एक न एक मराठा सरदारके झंडेके नीचे एकत्र हो जाते और शीघ्रही उन्हें अपनी योग्यता प्रदर्शित करनेके (यदि उनमें कोई गुण होता तो) लिए अनेक अवसर प्राप्त हो जाते। निर्भीकता और पराक्रमसे युक्त साहसिक कार्यकी ओर तुरन्त ध्यान दिया जाता, और उसकी रिपोर्ट भेजी जाती तथा उसके लिए उचित पुरस्कार मिलता। वास्तव में दैनिक मामलोंमें व्यावहारिक अनुभवके साथ साथ पौरुष और खिलाड़ी स्वभाव—बस इतना ही पर्याप्त था, और उन दिनों सभी लोगों को इन गुणों से अत्यधिक लाभ होता था।

विभिन्न ऐतिहासिक परिवारोंका जो विवरण मैंने तैयार किया है उसमें यह बात आसानी से दिखायी दे जाती है कि उनके परिवारों के संस्थापकोंने स्थायी रूपसे अपना लूटमार का जीवन १२ वर्षकी अवस्था के लगभग आरम्भ किया और प्रायः ७० वर्ष या उससे अधिक आयु तक जीवित रहे और अपना काम करते रहे। घरसे बाहर रहकर साहसिक जीवन व्यतीत करनेके कारण, जो उनके सैनिक पेशेके कारण सुलभ था, उनका स्वास्थ्य और वैभव दोनों बढ़ते थे। सब जातियोंके मराठे और ब्राह्मण जिनमें सारस्वत और प्रभु (अर्थात् कायस्थ लोग) शामिल थे, सभी शाहूके राज्य-कालमें होनेवाले साम्राज्यविस्तारके इस युगमें विशिष्ट रूपसे विख्यात हुए। साधारणतः प्रभुओं में से कुछको छोड़कर बाकी सब अपने पूर्वजोंके लिखापढ़ी करनेके पेशेमें ही लगे रहे। सारस्वत लोग हिसाब-किताब रखने और घरेलू मामलोंका प्रबन्ध करने में बड़े कुशल थे। दक्षिणी तथा दूसरे ब्राह्मणों ने, जिनका शिवाजी के समयके पूर्व, मौलिक पेशा था—पुरोहिती और धर्मग्रंथोंका अध्ययन करना, शीघ्र ही सैनिक पेशा अख्तियार

कर लिया। इस पेशे में योग्य ब्राह्मण पेशवाओं के शासन कालमें उन्होंने सरलता-पूर्वक संरक्षण प्राप्त कर लिया। इस सिलसिले में यह जान लेना एक रोचक विषय है कि किस प्रकार ब्राह्मण लोग पुरोहित से योद्धा बन गये और किस तरह से उनके नामों की शैली बदल गई। प्रथम पेशवा बालाजी आमतौर पर अपने परिचित नाम, बालाजी पन्त नाना के नामसे ही विख्यात रहे; «पंत» विशेषण «पंडित» का छोटा रूप है। इससे यह बात मालूम होती है कि प्रारम्भ में व्यक्ति संस्कृत का एक विद्वान् पंडित मात्र था; परन्तु दूसरा पेशवा बाजी «पंत» के बजाय बाजीराव कहा जाने लगा, जिसका मतलब था—क्षत्रिय या सैनिक पेशा। तीसरे पेशवा का भी नाम बाला जी था पर यह बालाजी «पंत» न कहला कर बाला जी «राव» कहलाया। उपाधिमें यह महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जानेसे करीब-करीब सभी ब्राह्मणोंके ऊपर प्रभाव पड़ा और पेशवाओं द्वारा अपने पेशेमें किये गये परिवर्तन की सूचना मिली।

शाहूकी शासनपद्धतिने सब तरहके लोगों को वास्तविक «स्वराज्य» प्रदान किया। सैनिक विजय के उपा कालमें, मराठा जीवन विभिन्न दिशाओं में फैल गया। लेखक, सेठ, मुनीम, कारीगर, घर बनानेवाले, चित्रकार, पुरोहित, चारण और हर तरहके नौकर लोग प्रार्थनाएँ ले लेकर आये और शीघ्र ही उत्तरके सभी बड़े-बड़े नगरोंमें मराठों की बस्तियां कायम हो गयीं। इन बातको निश्चित करनेके लिए कि बड़ौदा, नागपुर, इन्दौर, धार, देवास, उज्जैन और झांसी जैसे नगर किस प्रकार मुख्य रूपसे मराठों के उपनिवेश बन गये, हमें उनके ऊपर केवल एक सरसरी निगाह डालनेकी जरूरत है। ये बस्तियां प्राचीन हिन्दू-वातावरण के बीच विचारपूर्वक बसाई गयी थीं। उत्तर के साथ सम्पर्क होनेसे स्वयं दक्षिण के जीवनमें एक नया रस पैदा हो गया और नये प्रभाव के चिह्न परिलक्षित होने लगे। आवश्यकता एवं विलासकी अनेक वस्तुएँ, कपड़े, आभूषण, घरका फ़र्नीचर, फ़ौजी पोशाक, चित्रकारी, उच्च की चीजें, संगीत, नृत्य, दरबार का शिष्टाचार, उत्तरी भारत के अमीरोंका ठाठ बाट और आचार व्यवहार शीघ्र ही दक्षिण भरमें प्रचलित हो गये और सभी उनका अनुकरण करने के लिए उतावले हो उठे। उस समयके कागजों में उपर्युक्त बातें पर्याप्त रूपसे दिखायी पड़ती हैं। इस तरह से स्वयं मराठी भाषा का शब्दभण्डार काफ़ी बढ़ गया और उसकी अभिव्यक्ति में पर्याप्त उन्नति हुई। ऐसे अनेक पत्र प्रकाशित हो चुके हैं जो दक्षिण के निवासियों ने उत्तर से अनेक प्रकार की वस्तुएं तथा सामग्रियां मंगाने के लिए लिखे थे। उन वस्तुओं में नर्तकियां भी शामिल हैं जिनको पेशवा और उसके

काफ़ी था, और ये सारी चीजें आसानीसे सीखी जा सकती थीं। दक्षिणके सस्ते टट्टुओं ने घुड़सवारी करना एक पेशा बना दिया था। छोटेसे लेकर बड़े तक सभीके लिए यह विनोद का साधन था। स्त्रियां भी उससे परे न थीं। कारण, उन दिनों करीब-करीब हर स्त्रीके लिए घुड़सवारी करना और वह भी अच्छी तरह से करना अनिवार्य था, क्योंकि खतरेके समय प्राण और सुरक्षा के लिए वह एक आवश्यक गुण था। फैनी पार्क (Fanny Park) नामकी एक अंगरेज महिला ने जिसे १८३५ ई० में बैजाबाई सिन्दे (Baijabai Sinde) (दौलतराव की पत्नी) ने अपने यहां निमंत्रित किया था, अपनी आत्मकथा में उत्तम घुड़सवारी तथा उन दूसरे खेलोंका सजीव वर्णन दिया है जिनमें उस कालकी मराठा-नारियों ने इतनी अधिक कुशलता प्राप्त कर रखी थी। १२ या १४ वर्षके नवयुवक, जो हम लोगोंके जमानेमें अपनी पाठशाला-शिक्षा तक नहीं समाप्त कर पाते, एक न एक मराठा सरदारके झंडेके नीचे एकत्र हो जाते और शीघ्रही उन्हें अपनी योग्यता प्रदर्शित करनेके (यदि उनमें कोई गुण होता तो) लिए अनेक अवसर प्राप्त हो जाते। निर्भीकता और पराक्रमसे युक्त साहसिक कार्यकी ओर तुरन्त ध्यान दिया जाता, और उसकी रिपोर्ट भेजी जाती तथा उसके लिए उचित पुरस्कार मिलता। वास्तव में दैनिक मामलोंमें व्यावहारिक अनुभवके साथ साथ पौरुष और खिलाड़ी स्वभाव—बस इतना ही पर्याप्त था, और उन दिनों सभी लोगों को इन गुणों से अत्यधिक लाभ होता था।

विभिन्न ऐतिहासिक परिवारोंका जो विवरण मैंने तैयार किया है उसमें यह बात आसानी से दिखायी दे जाती है कि उनके परिवारों के संस्थापकोंने स्थायी रूपसे अपना लूटमार का जीवन १२ वर्षकी अवस्था के लगभग प्रारम्भ किया और प्रायः ७० वर्ष या उससे अधिक आयु तक जीवित रहे और अपना काम करते रहे। घरसे बाहर रहकर साहसिक जीवन व्यतीत करनेके कारण, जो उनके सैनिक पेशेके कारण सुलभ था, उनका स्वास्थ्य और वैभव दोनों बढ़ते थे। सब जातियोंके मराठे और ब्राह्मण जिनमें सारस्वत और प्रभु (अर्थात् कायस्थ लोग) शामिल थे, सभी शाहूके राज्य-कालमें होनेवाले साम्राज्यविस्तारके इस युगमें विशिष्ट रूपसे विख्यात हुए। साधारणतया प्रभुओं में से कुछ को छोड़कर बाकी सब अपने पूर्वजोंके लिखापढ़ी करनेके पेशेमें ही लगे रहे। सारस्वत लोग हिसाब-किताब रखने और घरेलू मामलोंका प्रबन्ध करने में बड़े कुशल थे। दक्षिणी तथा दूसरे ब्राह्मणोंने, जिनका शिवाजी के समयके पूर्व, मौलिक पेशा था—पुरोहिती और धर्मग्रंथोंका अध्ययन करना, शीघ्र ही सैनिक पेशा अख्तियार

कर लिया। इस पेशे में योग्य ब्राह्मण पेशवाओं के शासन कालमें उन्होंने सरलता-पूर्वक संरक्षण प्राप्त कर लिया। इस सिलसिले में यह जान लेना एक रोचक विषय है कि किस प्रकार ब्राह्मण लोग पुरोहित से योद्धा बन गये और किस तरह से उनके नामों की शैली बदल गई। प्रथम पेशवा बालाजी आमतौर पर अपने परिचित नाम, बालाजी पन्त नाना के नामसे ही विख्यात रहे; «पंत» विशेषण «पंडित» का छोटा रूप है। इससे यह बात मालूम होती है कि प्रारम्भ में व्यक्ति संस्कृत का एक विद्वान् पंडित मात्र था; परन्तु दूसरा पेशवा बाजी «पंत» के बजाय बाजीराव कहा जाने लगा, जिसका मतलब था—क्षत्रिय या सैनिक पेशा। तीसरे पेशवा का भी नाम बाला जी था पर वह बालाजी «पंत» न कहला कर बाला जी «राव» कहलाया। उपाधिमें यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जानेसे करीब-करीब सभी ब्राह्मणोंके ऊपर प्रभाव पड़ा और पेशवाओं द्वारा अपने पेशेमें किये गये परिवर्तन की सूचना मिली।

शाहूकी शासनपद्धतिने सब तरहके लोगों को वास्तविक «स्वराज्य» प्रदान दिया। सैनिक विजय के उपा कालमें, मराठा जीवन विभिन्न दिशाओं में फैल गया। लेखक, सेठ, मुनीम, कारीगर, घर बनानेवाले, चित्रकार, पुरोहित, चारण और हर तरहके नौकर लोग प्रार्थनाएँ ले लेकर आये और शीघ्र ही उत्तरके सभी बड़े-बड़े नगरोंमें मराठों की बस्तियां कायम हो गयीं। इस बातको निश्चित करनेके लिए कि बड़ौदा, नागपुर, इन्दौर, धार, देवास, उज्जैन और झांसी जैसे नगर किस प्रकार मुख्य रूपसे मराठों के उपनिवेश बन गये, हमें उनके ऊपर केवल एक सरसरी निगाह डालनेकी जरूरत है। ये बस्तियां प्राचीन हिन्दू-वातावरण के बीच विचारपूर्वक बसाई गयी थीं। उत्तर के साथ सम्पर्क होनेसे स्वयं दक्षिण के जीवनमें एक नया रस पैदा हो गया और नये प्रभाव के चिह्न परिलक्षित होने लगे। आवश्यकता एवं विलासकी अनेक वस्तुएँ, कपड़े, आभूषण, घरका फर्नीचर, फौजी पोशाक, चित्रकारी, तथ्य की चीजें, संगीत, नृत्य, दरबार का शिष्टाचार, उत्तरी भारत के अमीरों का ठाठ बाट और आचार व्यवहार शीघ्र ही दक्षिण भरमें प्रचलित हो गये और सभी उनका अनुकरण करने के लिए उतावले हो उठे। उस समयके कागजों में उपर्युक्त बातें पर्याप्त रूपसे दिखायी पड़ती हैं। इस तरह से स्वयं मराठी भाषा का शब्दभण्डार काफी बढ़ गया और उसकी अभिव्यक्ति में पर्याप्त उन्नति हुई। ऐसे मराठी पत्र प्रकाशित हो चुके हैं जो दक्षिण के निवासियों ने उत्तर से अनेक प्रकार की वस्तुएं तथा सामग्रियां मंगाने के लिए लिखे थे। उन वस्तुओं में नर्तकियां भी शामिल हैं जिनको पेशवा और उसके

सरदारों के दरबारोंमें बड़ी मांग रहती थी। मेरे विचारसे, उत्तर और दक्षिणके बीच होनेवाला यह आदान-प्रदान सर्वथा स्वास्थ्यप्रद एवं लाभदायक रहा, और दोनों के जीवनको अधिक समृद्धिशाली बनाता रहा। इसमें सन्देह नहीं कि मराठा विजय की प्रारम्भिक अवस्थाओंमें बारबार सालाना कर और टैक्स वसूल किये जाने के कारण उत्तरी भारतका तमाम धन दक्षिण चला जाता रहा होगा, पर यहा भी इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि धन रहता तो देशमें ही था। वह देशसे बाहर नहीं जाता था और अन्तमें जनता को किसी न किसी रूपमें फ़ायदा पहुँचता ही था। पेशवा लोग फ़िजूलखर्च कभी नहीं रहे, और उन्होंने व्यर्थके दिखावे अथवा मंहगे जीवनके ऊपर रुपया बरबाद नहीं किया। बादको, जब मराठा सरदारों ने उत्तर और पश्चिम में एक तरहसे अपनी स्थायी राजधानियां ही बना लीं, तब मराठों द्वारा वसूल किये जानेवाले करोंमें पहलेवाली वह कटुता नही रही। वे उसी तरहके मामूली टैक्स *जान पड़ने लगे, जो हर जगह सभी लोगोंको अपनी सरकारको देने पड़ते हैं। ध्यान* रहे कि दक्षिणसे उत्तर में एक चीजकी मांग बराबर आया करती थी, वह थी—नाना प्रकार के प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंकी, काव्य, साहित्य, धर्मग्रंथ और «पुराणों» आदि की पांडुलिपियों की मांग। लगानका हिसाब-किताब, भूमिकी नाप जोख और युद्ध दक्षिणी ढंगके अनेक शासन-सम्बन्धी कार्य उत्तरमें स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोगमें लाये जाने लगे। धार्मिक कृत्य विशेष रूपसे महाराष्ट्री ढंगसे किये जाने लगे। उत्तर और दक्षिणके बीच होनेवाले इस आदान-प्रदान तथा पूरी जनता के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर उसका प्रभाव विशेषरूप से अध्ययन करने योग्य है।

७. शाहूका व्यक्तित्व एवं चरित्र.

महाराष्ट्रमें राजा शाहूका नाम आज भी बड़े आदरके साथ लिया जाता है। सचमुच वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसने किसी के साथ कभी बुराई नहीं की। हजारों लोग उसे अपना कल्याणकर्ता समझते थे और सच्चे हृदय से उसे आशीर्वाद देते थे। यद्यपि शाहू और उसके चचेरे भाई सम्भाजी में, जो कोल्हापुर का राजा था, कभी नहीं पटती थी, तथापि शाहू अपने पेशवा या किसी अन्य पदाधिकारी को इस बात की आज्ञा कभी न देता था कि वे किसी दोषके लिए या कर्त्तव्य की उपेक्षा करने के लिए उसे सतायें। कहते हैं, एक बार सम्भाजी ने कुछ हत्यारोंको धन देकर बुलाया और उन्हें शाहूकी हत्या करने के लिए भेजा, परन्तु जब वे शाहूके सामने आये तो उसे

जो उस समय केवल १९ वर्षका था। इसके पहले उसकी योग्यताकी परीक्षा न हुई थी और न किसीको उसकी योग्यताके बारेमें कुछ पता ही था। पर शाहू ने तर्क बुद्धि से काम न लेकर सहज ज्ञानके आधार पर राज्यके पुराने और अनुभवी सेवकों को छोड़ दिया जो उस पदके लिए अपना हक़ जताते थे, और बाजीराव को पेशवा पद पर नियुक्त कर दिया। शाहू ने उन सबको एक तरफ़ कर दिया और एक ऐसे व्यक्ति को अपने कामके लिए चुन लिया जो बादकी घटनाओंके बीच बड़ा योग्य सिद्ध हुआ और इस प्रकार शाहू का चुनाव बिल्कुल ठीक और न्यायसंगत रहा। सार्वजनिक पदों को एक परिवारमें वंशपरम्परागत बना देना कहां तक बुद्धिमानी की बात है, इस सम्बन्ध में हमेशा मतभेद रहा है और मैं तो इस प्रथा को न्यायसंगत बतानेके लिए तैयार नहीं हूं। तो भी इस सम्बन्धमें हमको सावधानीके साथ एक बातका ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि हम उस जमानेकी बातोंका निर्णय आजकलके नियमोंके अनुसार न करें। २० वर्ष तक कठिन सेवा करनेके पश्चात् बाजीराव १७४० ई० में कम उम्र में ही मर गया। उसका लड़का बालाजी, जो आमतौर पर नाना साहेब कहलाता था, जिस समय पेशवा बनाया गया, उस समय केवल १८ वर्षका था। शाहू की ढलती हुई उम्र और बिगड़े हुए स्वास्थ्यके कारण स्वामी और सेवक की उम्र और कार्य-क्षमता में जमीन आसमान का अन्तर था। मराठा-साम्राज्य दिन पर दिन बढ़ता चला जा रहा था और वह समय दूर न था जबकि वह भारत की समस्त शक्तियोंके बीच, जिनमें सम्राट् भी सम्मिलित था, सबसे महत्वपूर्ण शक्ति बनने वाला था। साम्राज्य-विस्तारके साथ-साथ उसके विग्रह-विषय भी बढ़ते जा रहे थे, जिनके प्रबन्धमें शाहू और उसके नवयुवक पेशवा बालाजी के बीच होने वाला अन्तर स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होता था। पहलेके चारों पेशवाओं ने लगातार उस नीतिका पालन किया जो आरम्भ में निर्धारित की गई थी, और उनके पास जो कुछ था वह सब हिन्दू-साम्राज्य निर्माण करनेके महान् उद्देश्यकी पूर्तिके लिए खतरेमें डाल दिया। यह वह उद्देश्य था जिसे सबसे पहले शिवाजी ने राष्ट्र के सम्मुख रखा था और यह आशा की थी कि सब लोग उसे ग्रहण करेंगे। इसलिए १७१३ से १७७३ तकका ६० वर्षोंका युग ऐसी घटनाओं, उपायों और योजनाओंकी एक अटूट शृंखला बनाता है, जिन सबका उद्देश्य एक मात्र उसी लक्ष्यकी पूर्ति करना था। यह युग मराठा-शक्तिका सबसे अधिक देदीप्यमान युग कहा जा सकता है जिसमें राष्ट्र एवं उसके नेताओंने अपनी सर्वोत्कृष्ट योग्यता का प्रदर्शन किया। यह वह युग था जबकि भारतीय जनता को शान्ति, वैभव और

सुव्यवस्थित शासनकी प्राप्ति हुई। इस बातकी सत्यता पश्चिमी लेखकों* के आलोचनात्मक वर्णनों तकसे सिद्ध होती है। इस युगमें केवल इस बातके दृष्टान्त मिलते हैं कि १७१९ में प्रथम पेशवा द्वारा सम्राट् से प्राप्त तीनों सनदोंको किस प्रकार कार्यान्वित किया गया। जहां तक राजनैतिक घटनाओंकी मुख्य धारा का सम्बन्ध है, दिसम्बर, १७४९ में होनेवाली शाहू की मृत्युसे, इस काममें कोई बाधा नहीं पड़ी। यद्यपि इस घटना का मराठा राज्य की नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तथापि कुछ आलोचकोंका, जो तत्कालीन स्थितिसे अनभिज्ञ थे, कहना है कि तृतीय पेशवा ने छत्रपति के साथ छल करके अन्यायपूर्वक उसकी शक्तिको हथिया लिया। मौलिक कागज-पत्रोंकी सहायता से उस समयकी स्थितिका अब यथार्थ रूपमें अध्ययन किया जा सकता है। कमसे कम मेरा अपना विश्वास तो यही है कि पेशवा ने शाहू की मृत्युसे उत्पन्न होने वाले कष्टका साहसपूर्वक निवारण किया, और राष्ट्र के ऊपर आने वाले घोर संकटके समय स्थितिकी रक्षा की। शाहू की मृत्युके बाद महाराष्ट्र में क़रीब-क़रीब वैसी ही खतरनाक स्थिति पैदा हो गयी थी जैसा कि औरंगज़ेबकी मृत्युके पश्चात् मुग़ल दरबारमें पैदा हो गयी थी। पर तीसरे पेशवा के लिए यह एक प्रशंसनीय बात है कि उसने उस अग्रगामी नीति पर, जो पहले ही से अपनाई जा चुकी थी, इस घटना का कोई असर न पड़ने दिया और न ही उसमें किसी प्रकारकी बाधा आने दी। इस विषयकी और सूक्ष्म परीक्षा करनेकी आवश्यकता है।

८. शाहू के अन्तिम दिन, उत्तराधिकार का प्रश्न और पेशवा ने किस प्रकार स्थिति का सामना किया.

१७४३ ई० में जब पेशवा बालाजी बाजीराव उत्तरमें सम्राट् से मालवा ऐंठने और बंगाल को अपने प्रभावमें लानेमें व्यस्त था, तभी शाहू की अचानक बीमारी के कारण उसे एकाएक दक्षिण लौट आना पड़ा। एक पीढ़ीसे अधिक बीत चुकी थी, पर मराठोंने अपने शासनके लिए कोई संविधान न बनाया था, और शक्तिशाली राजा की इच्छा ही सर्वेसर्वा थी। ऐसी दशा में अन्तःपुरके षड्यंत्रोंका होना स्वाभाविक था, जिनके कारण स्थिति जटिल हो गयी थी और उसे संभालनेके लिए पेशवा का वहां पहुंचना अनिवार्य था। शाहू के दो रानियां थीं, पर दोनों निःसंतान।

* सर रिचार्ड टेम्पल् की 'ओरिएण्टल एक्सपीरियेन्स', पृष्ठ ४०२ देखिए।

अतः भविष्य अन्धकारमय था। यों तो शाहू शरीरसे हट्टा-कट्टा था पर बुढ़ापेके साथ आने वाली साधारण व्याधियों तथा परेशानियोंने उसे कमज़ोर बना दिया था। पांच सालके लम्बे अरसे तक वह मृत्युशय्या पर पड़ा रहा और पेशवा को इतने दिन राजधानीमें रहकर अपना अमूल्य समय नष्ट करना पड़ा। यदि ऐसा न होता, तो वह लाभदायक ढंगसे इसी समयका उपयोग करके उत्तरी भारत में अपने अधूरे कार्य को पूरा कर सकता था और इस तरहसे आगे चलकर अहमदशाह अब्दाली के आ जाने पर उत्तरी भारत में उत्पन्न होने वाले झंझटोंको संभवतः दूर कर सकता था। २५ वर्ष की छोटी आयुमें इस पेशवा को एक ऐसी संकटपूर्ण स्थितिका सामना करना पड़ा जिसके साथ मराठा राज्य का भाग्य जुड़ा हुआ था, और जिसने कुछ समयके लिए उसका अस्तित्व तक खतरेमें डाल दिया था। शाहू की दोनों रानियों और उसकी चाची ताराबाई को, जो सतारा के किलेमें बन्दी थीं, जब यह पता चला कि उसकी मृत्यु निकट है, तब उन लोगोंने उत्तराधिकार तथा राज्य के भावी शासकके विषयमें षड्यंत्र रचने आरम्भ कर दिये। उस समय शाहू के आस-पास एक दर्जनसे अधिक सुयोग्य परामर्शदाता, सरदार और सेनापति रहा करते थे, जिनके साथ वह खुलकर और बार-बार सलाह मशविरा किया करता था। शाहू उनके साथ बहुत समय तक इस विषय पर वाद-विवाद कर चुका था कि उसके बाद गद्दी पर बैठनेके लिए किसको उत्तराधिकारी चुना जाय।

पेशवाकी अपनी योजना यह थी कि सम्भाजीको कोल्हापुरसे ले आया जाय और सताराका राज्य उसे सौंप दिया जाय। इस प्रकार पूरा मराठा राज्य उसी प्रकार संयुक्त हो जायेगा जैसे १७०७ ई० में इंगलैंड और स्कॉटलैंड संयुक्त हुए थे। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि ऐसा होनेसे मराठा-राजनीतिमें निरन्तर चलनेवाले संघर्षका कमसे कम एक कारण तो दूर ही हो जायेगा। पर शाहू इस बातके बिल्कुल खिलाफ़ था कि उसका वही चचेरा भाई उसका उत्तराधिकारी बनाया जाय जिसके प्रति उसे आजीवन घृणा रही। जब गोद लेनेके लिए भोंसले परिवार में दूसरे योग्य नवयुवकोंकी खोज की जा रही थी, तब ताराबाईने अपने एक पोतेका नाम राम राजा बताया जो उसके मूर्ख पुत्र शिवाजी का पुत्र था। शिवाजीकी मृत्यु १७२६ में हो चुकी थी। ताराबाई ने बताया कि इस डरसे कि कहीं सम्भाजी (राम राजा का चाचा और ताराबाई का लड़का) राम राजाको मारनेकी चेष्टा न करे, उसने (ताराबाई) राम राजाको बचपनसे ही घरसे

बहुत दूर, किनारेके एक गांवमें छिपा रखा था, और हर तरहसे शाहूके हृदय पर यह बात अंकित कर दी कि रामराजा शिवाजी महान्‌का अपना ही परपोता है, इसलिए बुद्धिमानी इसीमें है कि उसको उत्तराधिकारी चुन लिया जाय ताकि उसके (शाहूके) बाद वह सताराकी गद्दी पर बैठ सके। अनेक षड्यंत्रों और झंझटोंके कारण सतारामें उस समय जो भयंकर स्थिति पैदा हो गयी थी उसके कारण राम राजाको, उसके गुप्त निवास-स्थानसे तुरन्त वहां लाना ठीक नहीं समझा गया; और शाहूने काफ़ी सोच-विचारके बाद अपने हाथसे दो छोटे-छोटे नोट (notes) लिखे, जो अब उसकी वसीयत माने जाते हैं। उनके (नोटोंके) अन्दर शाहूने यह व्यवस्था कर दी कि उसकी मृत्युके बाद रामराजा गद्दी पर बैठाया जाय और पेशवा पहले ही की तरह राज्यका शासनभार संभालता रहे। दोनों नोट ज्योंके त्यों छाप दिये गये हैं और यह बात मान ली गयी है कि वे शाहूके ही लिखे हुए हैं। इसलिए उनकी सहायतासे यह बात निश्चित रूपसे सिद्ध हो जाती है कि वसीयतनामेकी शर्तोंके अनुसार उत्तराधिकारी चुननेमें पेशवाने कोई व्यक्तिगत चाल नहीं खेली, जैसा कि अक्सर अपर्याप्त प्रमाणके आधार पर कहा जाता है। वास्तवमें, अब यह जान पड़ता है कि इन वसीयतोंमें जो कुछ लिखा है, और उनके अन्दर शाहू द्वारा जो आदेश दिये गये हैं, उनमें पेशवाकी तरफ़से किसी प्रकारके स्वार्थपूर्ण उद्देश्यकी गुंजाइश नहीं है। उसने पुत्रकी तरह अपने धर्मको निभानेकी प्रवृत्तिमें यथोचित अपने कर्तव्यका पालन किया। युद्धकला और नीति-कौशल दोनोंमें पेशवाओंकी उत्तमता व्यापक रूपसे स्वीकार की जा चुकी थी, और जैसा कि वे सचमुच कई बार दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर चुके थे, अन्य मराठा सरदारोंकी तरह वे भी आसानीसे अपने लिए एक स्वतंत्र कार्य-क्षेत्र अलग कर सकते थे, और नागपुरके रघुजी भोंसलेकी तरह, केन्द्रीय सरकारके मामलोंमें दख़ल न देकर सारे झंझटोंसे दूर रह सकते थे; क्योंकि यह तो एक ऐसा काम था जिससे उन्हें मिलना तो कुछ न था, उल्टे शाहूकी मृत्युके बाद विभिन्न दलोंके दोषारोपण और नाराज़गी ही हाथ लगनी थी।

हृदयसे उदार और कोमल होते हुए भी, शाहू इस बातका अनुभव कभी न कर सका कि अन्य मानवीय मामलोंकी तरह राज्य और उसका शासन भी प्रगतिशील होते हैं; समय एवं परिस्थितियोंके परिवर्तनके साथ-साथ उनका बदलना ज़रूरी है। उसने एक नामुमकिन शर्त रख दी, "पुरानी रीतिको मत छोड़ो और नईको मत आरम्भ करो।" इस शर्तका सम्बन्ध विशेषरूपसे उन सरंजामों या जागीरोंसे था जिनका

लोगोंकी आज्ञा नहीं मानेंगे या जो उस सिंहासनसे नीचे आसन न ग्रहण करेंगे, जिसे शिवाजी ने अपने लिए बनवाया था। सच तो यह है कि मराठा शासकोंकी आधी ताकत हमेशा ही केन्द्रीय सत्तासे अलग रहने की इस प्रवृत्तिको रोकने और उसके लिए दंड देनेमें व्यय होती रही है, और जैसा कि हम सब जानते हैं, उनका पतन करने में भी इस प्रवृत्तिका बहुत कुछ उत्तरदायित्व रहा है।

जब सतारा में शाहू का राज्याभिषेक हुआ, तो वह अपने विद्रोही सेनापति चंद्रसेन जाधव या राव रम्भा निम्बलकर को अपने काबूमें न ला सका। वे दोनों निजाम से जा मिले और उसकी अधीनता स्वीकार करके अपने लिए जागीरें प्राप्त कर लीं, जो इस समय भी उनके पास थीं। शाहू के दूसरे सेनापति दभरेके विद्रोहकी कहानी पहले ही बताई जा चुकी है। रघुजी भोंसले और पेशवा बालाजीराव ने मध्य भारत और बंगाल में खुले मैदान युद्ध किये। शाहू की मृत्यु होते ही पेशवा को यशवन्तराव दमदे और दामाजी गायकवाड़ की संयुक्त सेनाओंके एक जबर्दस्त विद्रोह का मुकाबला करना पड़ा। ऐसी खबर मिली थी कि कपटी नाजिबखां रुहेला का खुलेआम साथ देकर मल्हार राव होल्कर पानीपतकी महान् विपदा (मराठों के ऊपर) लाने का कारण बना था। पेशवा माधो राव प्रथमको अपने जीवन के तीन अमूल्य वर्ष पहले तो कर्तव्यविमुख, अपने सगे चाचा रघुनाथ राव को और बादमें नागपुर के भोंसले, प्रतिनिधि और गोपाल राव पटवर्धनकी संयुक्त सेनाओंके, दबाने में बरबाद करने पड़े। पेशवा पदके लिए रघुनाथ राव की लड़ाई और उसके द्वारा खुल्लमखुल्ला अंग्रेजोंकी सहायता की स्वीकृतिके फलस्वरूप मराठोंका प्रथम महायुद्ध हुआ, जिसने मराठा राज्यकी स्वतंत्रता को क़रीब-क़रीब नष्ट कर दिया। और अन्तमें, सभी लोग इस बातको अच्छी तरह से जानते हैं कि नाई वेलेजली और उसके भाई प्रसिद्ध ड्यूक ने किस कुशलता के साथ मराठा सर्दारों को एक दूसरे के खिलाफ भड़का दिया और हर एक को अलग-अलग अपने अधीन कर लिया। केन्द्रीय सत्ता के लिए, विद्रोही तत्वोंको सही रास्ते पर लानेका यह कर्तव्य हर कालमें और हर स्थान पर एक अप्रिय बात रही है, पर जब पेशवा ने व्यावहारिक कामों के लिए मराठा शासन के अधिष्ठाता के रूपमें छत्रपति का स्थान ग्रहण किया तो राजकीय प्रतिष्ठा के अभावमें यह काम दूना मुश्किल हो गया। पेशवा नारायण राव की हत्या के पश्चात् जब सारी शक्ति नाना फड़नीस के हाथ में आ पड़ी तब परिस्थिति और नाजुक हो गई, क्योंकि वह सूक्ष्मबुद्धि और राजनीतिमें कुशल भले ही रहा हो, पर जहां तक उसके पदका सम्बन्ध

है, वह केवल एक फड़नीस अथवा पेशवा के कार्यालयका मुख्य मुनीम भर था। यही असली कारण था जिसके फलस्वरूप महादाजी सिन्धिया तथा अन्य लोग प्रायः नाना की आज्ञा का पालन करनेसे इन्कार कर दिया करते थे। यह एक ऐसा भेद था जिसके परिणाम बड़े भयंकर होते हुए जान पड़े और अन्तमें दोनोंकी सुबुद्धिसे ही इसका अन्त हुआ। मराठों के भाग्यमें आनेवाले प्रत्येक संकटके साथ-साथ सरकारकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में किस प्रकार कमी आती गई, इस बातको सावधानीके साथ ध्यानमें रखना चाहिए, क्योंकि यह एक ऐसी बात है जिसके ऊपर, दूसरे और बाहरी कारणोंको छोड़ कर, इस तथ्यकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है कि मराठा शक्तिने अन्तमें इतनी आसानी के साथ अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली। जिस प्रकार शाहू की मृत्युके उपरान्त राजकीय शक्ति पेशवाओं के हाथमें आ गई थी, क्योंकि वे योग्य थे, उसी प्रकार जब पेशवाओं के परिवारमें राजकीय शक्ति ग्रहण करनेके लिए कोई योग्य सदस्य न रहा तो पूरे राज्य का प्रबन्ध नाना फड़नीस के हाथ में आ गया। यद्यपि मानवीय मामलों में योग्यता के ही ऊपर सब कुछ निर्भर होता है, पर राजनीतिमें विधियों और संस्थाओंका भी अपना अलग प्रभाव पड़ता है। अतएव क्रमसे एकके बाद एक आनेवाले प्रतिनिधिकी शक्ति मौलिक शक्तिसे बहुत अधिक घटती चली गयी। इतिहास के विद्यार्थीको एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए। वह यह कि पेशवाओं या दूसरे लोगोंकी छत्रपति की शक्ति हड़प कर जानेका दोष लगानेके पूर्व स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातोंके ऊपर सावधानीके साथ विचार जरूर कर लिया जाय।

पर अंग्रेजी ताकतसे मुठभेड़ होने पर तृतीय पेशवा बालाजी राव की नीति अपूर्ण जान पड़ी। सच तो यह है कि अंग्रेजोंके साथ तुलना करने पर मराठा राजनीतिज्ञोंका स्थान बहुत नीचेकी श्रेणीमें आता है। भारत के इतिहासमें १७५०-६१ का समय निस्सन्देह सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी है, क्योंकि इसी युगमें अंग्रेजोंने प्रसिद्ध सप्तवार्षिक युद्धमें अपने प्रतिद्वन्द्वी फ्रांसीसियों को निश्चित रूपसे परास्त किया, बंगाल और मद्रास के दो बड़े-बड़े सूबे जीते और पूर्वी समुद्रतट के चारों ओर तथा उत्तरमें इलाहाबाद तक अपनी प्रभुता का जाल फैलानेका काम लगभग समाप्त कर लिया। इस समय पेशवा ने दो भारी भूलें कर दीं। एक तो यह कि उसने स्वयं अपने नाविक सेनाध्यक्ष ऐंग्रिया (Angria) के नेतृत्वमें मराठा जलसेनाको कुचल देनेके लिए अंग्रेजोंसे सहायता ली, और दूसरे प्लासी के युद्धके पहले, जिस समय अंग्रेज लोग सिराजुद्दौला को बहुत परेशान कर रहे थे, उसने बंगाल में मोगलों के हृदों

का समर्थन करनेकी बिल्कुल परवाह न की। बहुत पहलेकी बात है जब रघुजी ने बंगाल पर विजय प्राप्त कर ली थी, और वहांसे सालाना चौथ वसूल किया करता था। उसके बदलेमें मराठे वहांके सूबेदारको सहायता देनेके लिए बाध्य थे। जब अंग्रेजोंने सिराजुद्दौला के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी, उस समय पेशवा का कर्तव्य था कि वह उसकी सहायता के लिए तुरन्त सेना भेजता। १७५६ में तो तासतौरसे पेशवा बिल्कुल खाली था; उसकी स्थिति दृढ़ थी, और वह उस समय भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली शासक था। उस समय यदि वह कर्नाटक और बंगाल दोनों जगहोंमें उनके खिलाफ़ लड़नेके लिए क़दम बढ़ाता, तो उनका आगे बढ़ना तुरन्त रुक गया होता।

किन्तु पेशवा ने दिल्ली की राजनीति की ओर ज़रूरतसे ज्यादा ध्यान दिया। अब्दाली के साथ बेकारकी दुश्मनी मोल लेकर अपने ऊपर पानीपत की घोर विपत्ति बुला ली। इस असावधानीके साथ सतलज पार राज्य जीतनेके लिए पंजाब के अन्दर जानेकी उसे कोई आवश्यकता न थी। परन्तु पानीपत ने भारतीय इतिहास का भावी क्रम निश्चित कर दिया। मराठों और मुसलमानोंने उस भयंकर युद्धमें एक दूसरेको कमज़ोर बना दिया, जिसके कारण अंग्रेज़ोंके लिए भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके उद्देश्योंकी पूर्ति करना सरल हो गया। ऐसा लगता है कि यदि पेशवा चाहता तो प्लासी और कर्नाटक दोनों जगहोंके युद्धोंमें सफलतापूर्वक हस्तक्षेप कर सकता था, और इस प्रकार अंग्रेज़ोंका प्रभुत्व स्थापित होनेसे रोक सकता था। पर वह स्वयं उत्तरमें नहीं गया, नीतिकी आवश्यक उन्नति अपने अधीन अयोग्य पदाधिकारियोंको सौंप दी, और अंग्रेज़ोंकी चालके वास्तविक स्वरूपको न समझ पाया। इस प्रकार ऐसे नाज़ुक समयमें उसमें बुद्धिमानी और दूरदर्शिता की कमी पाई गयी। यदि उसने अखिल भारतीय राजनीतिको समझ लिया होता तो वह दूसरी तरहसे काम करता। फ़्रांसीसियों और अंग्रेज़ोंके बीच होनेवाले सप्तवर्षीय युद्धके परिणामों, और जिस आसानी के साथ सारे मुसलमान शासकों, सम्राट्, मीर जाफ़र, मीर क़ासिम और अवध के नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला को जल्दी-जल्दी खतम करके अंग्रेज़ लोग समस्त व्यावहारिक उद्देश्योंके लिए पूरे क्षेत्रके स्वामी बन बैठे उससे इस बातकी सत्यता स्पष्ट रूपसे स्थापित हो जाती है।

५

मुसलमानों तथा मराठों के बीच होनेवाले संघर्ष का विकास

१. पानीपत का युद्ध—पूर्वगामी कारण.

इस महान् घटनाके पूर्वगामी कारणों को जाननेके लिए हमको एक या दो दशक पीछे जाना पड़ेगा, और तभी हम उसके कारणोंको स्पष्ट रूपसे क्रमबद्ध कर सकेंगे। अब पता लगता है कि पानीपत की दुर्घटना मराठों की उन जिम्मेदारियोंका नैसर्गिक परिणाम थी जो पहले तीन पेशवाओं ने अपने ऊपर ओढ़ रखी थीं। उन सभी ने उत्साह-पूर्वक हिन्दू पदपादशाहीके उस आदर्श को पूर्ण करने का प्रयास किया जिसकी धारणा सर्वप्रथम शिवाजी महान्‌के मनमें पैदा हुई थी, पर जिसे दुर्भाग्यसे वे पूरा न कर पाये थे। पेशवाओंकी इस महत्त्वाकांक्षाके कारण विभिन्न सरदारों तथा शासकोंके साथ उनकी शत्रुता बढ़ती गयी, क्योंकि सम्राट् की केन्द्रीय सत्ताका समर्थन बंद हो जानेके कारण निज़ाम की तरह, उनमें से हर एक अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य बना लेने और छिन्न-भिन्न होते हुए साम्राज्य का कोई टुकड़ा हथिया लेनेके फ़िराक में रहता था। १७३९ में होनेवाले नादिरशाहके आक्रमण से साम्राज्यको जो ज़बरदस्त धक्का लगा था उसके कारण सम्राट् की स्थिति इतनी नाज़ुक हो गयी कि विशिष्ट शक्तिवाला कोई भी आक्रमणकारी उसे धूल में मिला सकता था। ऐसी हालतमें जब उसे पता चला कि पेशवा लोग भारत की विभिन्न लड़नेवाली जातियोंको हराने में समर्थ रहे हैं तब उसने अपनी स्थिति का प्रतिपादन करनेके लिए उनका संरक्षण प्राप्त करनेका निश्चय किया। पेशवा लोग पहले ही से १७४३ ई० में मालवा और

बुन्देलखंडके सूबे व्यावहारिक रूपमें सम्राट्के हाथ से निकाल चुके थे और सीमावर्ती राजपूत रियासतों से सरदेशमुखी तथा चौथ वसूल करने लगे थे। उन राजपूत रियासतोंमें जयपुरकी रियासत मुख्य थी, जहां सवाई जयसिंह राज्य करता था। उसी वर्ष (१७४३) राजाकी मृत्यु हो जानेके कारण प्रतिद्वन्द्वी हकदारोंके बीच उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ गया, जो स्वाभाविक ही था। सूक्ष्मबुद्धि पेशवा ने उस युद्धसे लाभ उठानेके लिए तुरन्त क़दम बढाया। उसने फौरन् रानोजी सिन्धिया और मल्हारराव होल्कर नामके अपने दो योग्यतम सेनाध्यक्षोंको, जो मालवाकी दो वर्तमान रियासतोंके संस्थापक थे, जयपुरके रिक्त राजसिंहासनके सम्बन्ध में होनेवाले झगडेका फैसला करनेके लिए तैनात किया, और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सैन्य-बलका प्रयोग करनेका भी आदेश दिया। शाहूकी वृद्धावस्था और गिरते हुए स्वास्थ्यके कारण सतारा में पैदा हो जानेवाली परेशानियों, और निजामुलमुल्ककी चालोंके, कारण, जो उस समय कर्नाटकके ऊपर अपना अधिकार मजबूत करने की चेष्टा में लगा हुआ था, पेशवा घटनाओंके क्रमका निर्देशन करनेके लिए उत्तर में बहुत दिनों तक उपस्थित न रह सका।

महत्वपूर्ण विभूतियोंकी मृत्युसे हर कालमें और हर स्थान पर राजनैतिक उथल-पुथल मचती रही है, और इस सम्बन्धमें अट्ठारहवीं शतीका मध्य भाग, भारतके लिए विशेष अशान्तिका युग सिद्ध हुआ और उसने उसके इतिहासका क्रम वस्तुतः बदल दिया। इसलिए निम्नलिखित घटनाओंको सावधानीके साथ ध्यान में रख लेना विद्यार्थीके लिए बड़ा उपयोगी होगा--

२१- ६-१७४३—सवाई जयसिंह की मृत्यु होती है।
६- ६-१७४७—नादिरशाह की हत्या कर डाली जाती है और अहमदशाह अब्दालीका उत्कर्ष होता है।
१५- ४-१७४८—सम्राट् मुहम्मदशाह की मृत्यु होती है।
२१- ५-१७४८—निजामुलमुल्क मर जाता है।
२१- ६-१७४९—जोधपुरके अभयसिंह की मृत्यु होती है।
१४-१२-१७४९—राजा शाहू की मृत्यु होती है।
५-१२-१७५०—नासिरजंग की हत्या की जाती है।
१२-१२-१७५०—जयपुर का ईश्वरीसिंह आत्महत्या कर लेता है।

इन घटनाओंने एक जटिल (confused) स्थिति पैदा कर दी जिसका सावधानीकेसाथ विश्लेषण करना हमारे लिए बहुत जरूरी है, खासतौरसे दिल्ली-दरबार और सतारामें घटित होनेवाली घटनाओंके सम्बन्धमें। जयसिंह की मृत्यु के बाद जो उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हुआ था वह व्यावहारिक रूपमें १७४५ से १७५० तक चलता रहा। इसी तरह, १७४८ में सम्राट् की मृत्यु होने पर वजीर सफ़दरजंगको रुहेलोंके साथ एक युद्ध करना पड़ा जो नवम्बर १७४८ से लेकर अप्रैल १७५२ तक जारी रहा। सिन्धिया और होल्करने, जिनको पेशवाने *स्थिति का मुकाबला करनेके लिए पूरे आदेश देकर अवसर तथा आवश्यकता के* अनुसार काम करने की पर्याप्त स्वतंत्रता सहित उत्तर में तैनात किया था, अपनी व्यक्तिगत ईर्ष्याके कारण मराठों का हित कमजोर बना दिया और दोनोंने मिलकर कुछ ऐसे काम कर डाले कि राजपूत राजाओंके साथ होनेवाली वह सारी मैत्री और सद्भावना नष्ट हो गई जिसे पहले दो पेशवाओंने शाहू की प्रेरणा पाकर बड़े परिश्रमसे पैदा किया था। इस बातको ध्यानमें रखना जरूरी है कि सिन्धिया और होल्कर के हाथों राजपूत-सहानुभूतिका इस प्रकार नष्ट होना, एक वह पूर्व-उपत कारण था जिसने भारतवर्ष के लिए हिन्दू-साम्राज्य-निर्माणके सम्बन्धमें मराठों द्वारा किये गये प्रयासोंको अन्तमें रोक दिया। जयपुर का शासक ईश्वरीसिंह अपने राज्य पर होनेवाले मराठा आक्रमणोंसे इतना दुःखी हो गया कि उसको अपना जीवन असह्य जान पड़ने लगा, और सर्पसे डसवाकर तीन पत्नियों सहित उसने आत्महत्या कर ली। तब उसकी बीस दासियोंने राजाकी चितामें भस्म होकर अपनी जान दे दी। चारों ओर के राजपूत राजा इस घटना का समाचार पाकर आगबबूला हो उठे, और मराठा करोंको वसूल करनेके लिए उस समय जयपुरमें आई हुई मराठा फौजोंके ऊपर उन लोगोंने अमानुषिक अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। २१-२-१७५१ को लिखे हुए एक पत्र* में पूरे मामलेका सुविस्तृत वर्णन मिलता है। उसको पढ़कर पता लगता है कि उसके बाद राजपूत और मराठे किस प्रकार एक दूसरेके कट्टर शत्रु बन गये। यदि शाहू उस समय मराठा राज्यका कर्णधार होता तो वह इस तरह की मर्यादाहीन छेड़छाड़के लिए कभी आज्ञा न देता।

राजपूतोंके साथ मराठोंने जो अविवेकपूर्ण व्यवहार किया सो तो किया ही, पर

** पी. डी. २ के संकलन का नं० ११।*

करते हुए बदला लेनेके लिए इस बार कुछ आगे बढ़ गया। दिल्ली से वह दक्षिण की ओर गया, हिन्दू मन्दिरों और मथुरा नगरको लूटा और आगरे तक का सारा देश तबाह कर दिया। पर वह यहां की जबर्दस्त गर्मी न बर्दाश्त कर सका और २ अप्रैल (१७५७) को दिल्ली छोड़ कर अपने देशको वापस लौट गया। लौटते समय वह जिस रास्ते से गुजरा वहांके लोगोंके ऊपर भीषण अत्याचार किये।

३. दत्ताजी सिन्धिया मार डाला गया.

अब्दालीके इस साहसपूर्ण व्यवहारने पेशवाकी आखें खोल दीं और सारी स्थिति उसकी समझमें आ गई। कर्नाटकमें तो वह अपूर्व सफलता प्राप्त कर ही चुका था, इसलिए उत्तरमें अफ़गान शत्रुके साथ युद्ध करना वह कोई गम्भीर कार्य न समझता था। जिस समय अब्दाली भारतमें प्रवेश कर रहा था उस समय भी, पेशवा ने अपने भाई राघोबाको दक्षिणसे एक बड़ी-सी सेना के साथ फिर भेजा। राघोबा अगस्तमें दिल्लीमें प्रविष्ट हुआ, और बीचके प्रदेशोंमें अफ़ग़ान-विजयके सारे चिह्नोंको मिटाता हुआ अगले वर्ष अपनी सेनाको लेकर पंजाबके अन्दर जा पहुंचा। इसके पहले कि राघोबा को पंजाबमें मराठों की स्थिति दृढ़ करने का समय मिल सके, और वह किसी भावी घटना का मुकाबला करने के लिए मजबूत सैनिक अड्डा क़ायम कर सके, पेशवा ने उसे दक्षिणमें बुला लिया और उसे सारी स्थिति अपने अधीनस्थ कर्मचारियों और अपना स्वार्थ देखनेवाले व्यक्तियोंके हाथमें छोड़कर वापस चले आना पड़ा। नजीबुद्दौला के लिए यह एक अच्छा मौका था। मराठोंके बढ़ते हुए प्रभाव के प्रति उसे जो द्वेष था उससे पूर्णतया प्रेरित होकर, उसने बहादुरी के साथ उनसे (मराठों से) लड़नेके लिए रुहेलों के समस्त द्रव्य साधनों को एकत्र किया, अब्दाली से जल्दी ही वापस आने की प्रार्थना की और मराठा सेनाओंके दिल्लीमें पुनः प्रवेश करने पर उनका मुकाबला करने के लिए जबर्दस्त तैयारी की। उधर पेशवा दक्षिणके मामलोंमें इस बुरी तरहसे फंसा हुआ था कि शाही दर्बार की घटनाओं के विकासकी ओर व्यक्तिगत रूपसे ध्यान देनेका उसे अवसर ही न मिला। होल्कर राजपूताने में था और दिल्लीमें दत्ताजी सिन्धिया अकेला स्थिति का मुकाबला करने के लिए रह गया था। वह एक उतावला और असावधान सैनिक था, इसलिए नाजिमके बढ़ते हुए षड्यंत्रों और क्रियाओंको समयसे चकनाचूर करनेमें असमर्थ था। १७५६ के अन्तमें अब्दाली शाह ने पंजाब पर अचानक चढ़ाई कर दी, और रुहेला सर्दारोंके साथ जल्दी से एक

मजबूत गठबन्धन करके, यमुना नदी को पार कर लिया। नदीके दाहिने किनारे पर पहुंचकर उसने दत्ताजी के ऊपर आक्रमण कर दिया और १० जनवरी १७६० को उसे मार डाला। तो भी, हर सालकी तरह शाह इस बार गर्मी के मौसम में अपने देश न लौटा, बल्कि पूरे साल भारत में बना रहा। इस बीच उसने न केवल मुगल राजसिंहासन की रक्षा के लिए अपने उपायों को पूर्ण किया, वरन् इस बातकी भी पूरी व्यवस्था की कि यदि मराठे एक बार फिर आने और उसका सामना करने का साहस करें तो उन्हें पूरी तरह से कुचल दिया जाय।

४. सदाशिवराव भाऊ हारा.

और सचमुच हुआ भी यही। अब्दाली के हाथों दत्ताजीकी पराजय एवं मृत्युकी दुःखद घटना का समाचार पेशवा के पास पहुंचने देर न लगी। जिस समय यह खबर पहुंची, वह उदयगिरिमें निजामके ऊपर प्राप्त होनेवाली अपनी विजय के ऊपर खुश हो रहा था। पर उस खुशीके बीचमें भी उसे भावी विपत्तिके काले बादल मंडराते हुए दिखाई पड़ गये। चुनौती का मुकाबला करनेके लिए उसने जल्दी से तैयारी की। अहमदनगर के निकट उसने एक बड़ी सी सेना इकट्ठी की, अपने अनुभवी सेनाध्यक्षों और सैन्यदलोंके नेताओंको जमा किया, और तोपखानेके काममें अपने कौशल के लिए प्रसिद्ध इब्राहिमखां गर्दी के नेतृत्व में, जो बुसी का सिखाया हुआ था, एक जबर्दस्त तोपखाना संगठित किया। पूरी तैयारी हो जाने पर उसने जल्दी से अपने सगे चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊके सेनापतित्व में सेना को रवाना किया और भाऊको यह आदेश दिया कि वह दुःखदायी अफगान संगठनसे निश्चित रूपसे निबटता आये। इस विशाल सेनाने १४ मार्च १७६० को गोदावरी के तट से प्रस्थान किया और ठीक दस महीने बाद, १४ जनवरी, १७६१ को पानीपतके मैदानमें उसकी पूर्ण पराजय हुई। मई के अन्तमें चम्बल पार कर लेने के बाद, प्रखर-बुद्धि भाऊ आगरे के दक्षिणमें गम्भीरा नदी के तट तक आ पहुंचा। इस समय उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह यमुना को पार करके अब्दालीसे, जिसकी फौजें वर्तमान अलीगढ़ के निकट अनूपशहर में छावनी डाले पड़ी थीं, भिड़ जाय। परन्तु समय से पहले वर्षा हो जाने के कारण नदीमें इतनी जोर की बाढ़ आ गई थी कि भाऊ और उसकी सेना को पूरे एक महीने तक उसके तट पर रुके रहना पड़ा। यमुना को पार करना बिल्कुल असम्भव जान कर, मराठा सेनाओं ने दिल्ली की ओर कूच किया और बिना किसी कठिनाई के उन्हों

लड़ाईमें कोई भाग न ले रहे थे। जाड़े का मौसम होनेके कारण दिन छोटे होते ही थे, इसलिए लड़ाई समाप्त होते-होते चारो ओर घना अन्धकार फैल गया था और उसी अंधेरे में कुछ लोग अपनी जान लेकर भाग गये। मराठा सेना के अधिकांश अनुभवी सेनाध्यक्ष या तो युद्धक्षेत्रमें वीर गति को प्राप्त हुए, या घावोंकी असह्य पीड़ा के कारण कालके ग्रास हुए या किसानों के हाथसे मार डाले गये। बहुत बड़ी संख्या में असैनिकों की निर्मम हत्या कर दी गई। इस विपत्तिका समाचार पेशवा के पास मालवा में एक सप्ताहके बाद पहुंचा। दु:खातिरेक से उसके दिमाग़की हालत इतनी बिगड़ गई कि वह कुछ महीनोंके अन्दर घुल-घुलकर मर गया। राजपूत लोग निश्चय ही मराठा सेनाओं की निराशामय स्थितिको सभाल सकते थे, पर उन्होंने जान-बूझकर चुपचाप बैठे-बैठे सब कुछ देखते रहना ही ठीक समझा।

५. युद्ध के परिणाम.

अधिकांश लेखक आमतौर पर यह समझते हैं कि पानीपतके युद्धने मराठोंकी उठती हुई शक्तिको पूरी तौर पर चूर कर दिया। पर मेरे विचारसे ऐसी बात नहीं है इसमें सन्देह नहीं कि जहां तक जन-शक्तिका सम्बन्ध है उन्हें इस युद्धसे भारी क्षति पहुंची; पर इसके आगे मराठोंके भाग्य पर इस विपत्तिका वस्तुत: कोई प्रभाव न पड़ा। नई पीढ़ीके लोग शीघ्रही, पानीपतमें होनेवाली क्षतिकी पूर्ति करनेके लिए उठ खड़े हुए। जहां तक अफग़ानों का सम्बन्ध था, उन्हें अपनी विजय से कोई लाभ न हुआ। अहमदशाह, १८ महीनेकी लम्बी और कष्टकारक लड़ाईसे पस्त हो चुका था। नजीबुद्दौला या उसके उत्साहहीन मित्रोंके ऊपर अब भरोसा रखनेकी कोई परवाह किये बिना, १७६१ में मार्चके आरम्भमें ही उसने भारतीय मैदानोंसे, जहां वस्तुत: उसे कोई लाभ न हुआ था, प्रस्थान कर दिया। दस वर्षों बाद मराठोंने अपनी खोई हुई शक्ति पुन: प्राप्त कर ली। अगले पेशवा और उसके उत्साही सेनाध्यक्ष, जिनमें महादजी सिंधिया शामिल था, असली सम्राट् को दिल्ली वापस ले आये, और मराठोंके संरक्षणमें उसे मुग़लोंके वंशपरम्परागत राजसिंहासन पर आसीन कराया। इस प्रकार १७१२ की लिखित प्रतिज्ञा की अक्षरश: पूर्ति हुई और साथ ही हिन्दू-पद-पादशाही का वह महान आदर्श भी अप्रत्यक्ष-रूपसे पूरा हुआ जिसके लिए पेशवा लोग अपने शासन कालके आरम्भ से प्रयास करते आये थे। मराठोंके पतन का आरम्भ उस दिनसे नहीं हुआ जिस दिन कि मराठों के ऊपर पानीपत की विपदा आई, वरन् उस दिनसे हुआ जबकि उनका सर्वोत्कृष्ट

एवं सर्वगुणसम्पन्न शासक, पेशवा माधवराव प्रथम १७७२ में समय से पूर्व ही मृत्यु का शिकार हुआ। मराठोंका महान् इतिहासकार इस विचारकी पूर्णतया पुष्टि करते हुए लिखता है—"मराठा साम्राज्यके लिए पानीपत के मैदान उतने घातक न थे जितने कि इस विशिष्ट राजकुमार का शीघ्र होनेवाला अंत।" मेजर इवानस् बेल (Major Evans Bell) लिखते हैं—"पानीपत की लड़ाई भी मराठोंके लिए एक प्रकार की विजय और गौरव थी। उन्होंने भारतीयोंके लिए भारत के हितमें युद्ध किया, जबकि दिल्ली, अवध और दक्षिणके बड़े-बड़े मुसलमान शासक एक ओर होकर षड्यंत्र रचते तथा अपने को संवारते रहे। यद्यपि मराठोंकी हार हुई तथापि विजयी अफगान वापस चले गये और फिर कभी भारत के मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं किया।

पर दूसरे अर्थमें पानीपत की लड़ाई वास्तव में एक भारतीय इतिहास में मोड़-बिन्दु सिद्ध हुई। अट्ठारहवीं शतीके मध्य भारतके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए दो शक्तिशाली दलोंके बीच स्पर्धा चल रही थी, वे थे उठते हुए मराठे और गिरते हुए मुसलमान। एक तीसरी शक्ति, अंग्रेज, भारतीय क्षितिज पर उदय हो ही रही थी। पहली दो ने अपने पारस्परिक संघर्षों द्वारा, जिनका अन्त पानीपतमें हुआ, दोनोंको इतना अधिक कमजोर बना दिया कि तीसरी के लिए मैदान साफ हो गया। «बम्बई की उत्पत्ति» के विद्वान् लेखक Dr. Gerson da Cunha ने इस तथ्यको पूर्णतया समझते हुए लिखा है—"अभियंा लोगोंके पतन और पानीपत की दुर्घटना ने अंग्रेजों को धूर्त पड़ोसियोंकी दासता से मुक्त कर दिया और उनके उत्कर्षमें जल्दी कर दी।" पानीपत के चार वर्ष उपरान्त क्लाइव ने जिस आसानीके साथ बंगालकी दीवानी, अर्थात्, व्यावहारिक रूपमें उस धनी सूबे और फलस्वरूप पूरे भारतके ऊपर अधिकार प्राप्त कर लिया उससे यह बात पर्याप्त रूपसे प्रमाणित हो जाती है। उड़ीसाको नागपुरके भोंसलों ने अपने अधीन कर लिया था, और यदि पेशवागण पानीपत में विजयी हुए होते तो, ऐसा निश्चय जान पड़ता है कि नागपुर के भोंसले या पेशवा लोग कोई भी इतनी आसानीके साथ बंगालको अपने हाथसे न निकल जाने देते, और क्लाइवको वे उत्तरी-पूर्वी भारत का निर्विवाद स्वामी न हो जाने देते।

९. मराठा विजयों के विषय में मुसलमानों के विचार.

जब एक ओर मैंने शिवाजी से लेकर पेशवाओं तक मराठा नीतिके उद्देश्यों एवं आदर्शों की यथाशक्ति स्पष्ट ढंग से व्याख्या करने की चेष्टा की है, तो दूसरी ओर

नहीं सुनाई देते। पर याद रखो—तुम्हारी ये चालें मुझसे नहीं चल सकतीं। मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि तुम नर्मदा नदी के दक्षिण को लौट जाओ और दक्षिण के ऊपर अधिकार रखकर सन्तोष करो। यदि तुम मान जाते हो तो सब भला ही भला है; यदि नहीं मानते तो फल तुम्हारे सामने आयेगा। तुम्हें स्वतंत्रता है—जो मार्ग चाहो वह अपनाओ।"

७. माधवराव, सर्वश्रेष्ठ पेशवा.

पेशवा बालाजी राव दो पुत्र, माधवराव और नारायणराव, तथा एक भाई रघुनाथराव छोड़ कर मरा था। माधवराव, जो उस समय सोलह वर्षका था, अपने पिता के उत्तराधिकारीके रूपमें पेशवा की गद्दी पर बैठा। पर अपनी आशाके अनुरूप शासनका संचालन उसके चाचा रघुनाथरावके हाथमें रहा। रघुनाथराव ने उत्साहके साथ काम करते हुए इस बात की पूरी कोशिश की कि माधवराव स्थायी रूपसे राज-काजसे अलग रखा जाय। पर माधवराव में स्वभावसे ही परिपक्व विचार-निर्णय, असीम उत्साह और सैनिक एवं राजनीतिज्ञके गुण विद्यमान थे। जब चाचा ने आधे राज्य पर अपना अधिकार जताया तो प्रारम्भिक संघर्ष शीघ्रही खुल्लम-खुल्ला लड़ाई के रूपमें परिवर्तित हो गया, क्योंकि यह माग अव्यावहारिक थी। एक घरेलू युद्ध आरम्भ हो गया जिसमें नवयुवक पेशवा विजयी हुआ। १७६८ में युद्धका अन्त हुआ। पेशवा ने अपने चाचा को पकड़ लिया और उसको पूनाके महलमें कड़ाई के साथ बन्दीके रूपमें रख दिया।

पानीपतमें आनेवाली मराठोंकी इस विपत्तिसे, जो अब इस घरेलू झगड़ेके कारण और बढ़ गई थी, लाभ उठानेवाले शत्रुओंका अभाव न था। निजामअली पूरी रफ्तार के साथ सेना सहित पूना की ओर चल पड़ा, परन्तु दो वर्ष तक लगातार चलनेवाले युद्धके पश्चात् राक्षसभुवन नामक स्थान पर वह पूर्णतया परास्त कर दिया गया और उसे मराठों की अधीनता स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। पेशवा ने तुरन्त शासनसंचालन अपने हाथमें ले लिया और अपने आदेशोंको कार्यान्वित करनेके लिए नाना फड़नीस और हरीपन्त फड़के को अपने प्रधान सचिवके रूपमें नौकर रखा। प्रसिद्ध रामशास्त्री का, जिसको पेशवा गुरुकी तरह मानता था, न्यायविभाग के संचालन में अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

पानीपत की दुर्घटना का एक अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि मैसूर में हैदरअली को बिना रोकटोक के उठनेका मौका मिल गया। उसने इस अवसरसे लाभ उठाकर कर्नाटकमें अपनी शक्ति बढ़ा ली और उस प्रदेशमें मराठा-विजयके समस्त चिह्नोंको मिटा देनेका प्रयास किया। इसलिए माधवरावको अपने समय और द्रव्यसाधनोंका उत्कृष्ट भाग अपने पहलेवाले समस्त प्रदेशों पर पुनर्विजय प्राप्त करने और हैदरअली को पूर्ण रूपसे अपने अधीन करनेमें व्यतीत करना पड़ा। कर्नाटक की चढ़ाईके साथ-साथ, पेशवाने नागपुरके भोंसलों को अपने अधीन कर लिया और उन्हें फिर से केन्द्रीय सरकार का आधिपत्य स्वीकार करनेके लिए विवश किया। उसने उनसे एक समझौते पर हस्ताक्षर कराये जिसकी शर्तोंके अनुसार उन्होंने पेशवाको मराठा-राज्यका अधिपति स्वीकार कर लिया और समस्त विद्रोहियों एवं शत्रुओंके विरुद्ध उसका साथ देनेकी प्रतिज्ञा की। १७६६ में होनेवाली कनकपुरकी यह सन्धि मराठा राज्यको संगठित शक्तिकी व्यवस्था करनेमें नवयुवक पेशवा के पराक्रम एवं योग्यता की एक महान् कृति मानी जाती है।

उसी साल पेशवा ने दिल्ली दर्बार और सामान्य रूपसे उत्तरी प्रदेशों में मराठों की प्रतिष्ठा एवं अधिकारोंकी, जिन्हें पानीपत की हारके कारण ठेस पहुंची थी, पुनः स्थापना करनेके लिए दो ब्राह्मण और दो मराठा सेनाध्यक्षोंके नेतृत्वमें एक शक्तिशाली सेना भेजी। चार सर्दारोंने, जिनमें महादाजी सिन्धिया एक था, अपने कामों में अद्भुत सफलता प्राप्त की, सम्राट्को दिल्लीमें उसके पूर्वजोंके राजसिंहासन पर बैठाया, रुहेलों को नीचा दिखाया, और मराठोंकी समस्त पूर्व प्रतिज्ञाओंको, जो आमतौरसे हिन्दू-पद-पादशाही कहलाती है, पूर्ण किया। ठीक उस समय जबकि मराठोंकी शक्ति और कूटनीति अपनी चरम सीमा को पहुंच चुकी थी, यह सर्वश्रेष्ठ पेशवा कुलक्रमसे प्राप्त क्षयरोगसे आक्रान्त होकर, २८ वर्षकी अल्पायुमें, पूरे राष्ट्रको गम्भीर शोक-सागरमें डुबाकर नवम्बर १७७२ में स्वर्गको सिधार गया। इस घटना को शिवाजी की मृत्युके बादसे मराठा शक्तिके ऊपर आनेवाली सबसे बड़ी विपत्ति समझना उस समय भी ठीक था और आज भी ठीक है।

ग्रान्ट डफ़ कहता है, "यद्यपि माधवराव में सैनिक गुणोंका प्राधिक्य था, तथापि एक सम्राट्के रूपमें उसने जो चरित्र पाया था वह कहीं अधिक प्रशंसनीय है। वह अपने किसी भी पूर्वजकी अपेक्षा अत्यधिक सम्मान पानेका अधिकारी है। अत्याचारीके विरुद्ध निर्बलका, धनीके विरुद्ध निर्धन का समर्थन और सामाजिक नियमोंके अनुसार

ने मॉस्टिन को अंग्रेज राजदूतके रूपमें भेंट करनेके लिए पूना बुलाया, परन्तु जब वह वहां पहुंचा तब पेशवा का रोग बहुत बढ़ चुका था और दो महीने बाद, नवम्बर १७७२ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद भी कई वर्ष तक मॉस्टिन पूना में रहता रहा, और पेशवा नारायणराव की हत्या के फलस्वरूप मराठा दर्बारमें घटित होनेवाली घटनाओंकी रिपोर्ट बम्बई भेजता रहा। मॉस्टिन के सुझावको मानकर अंग्रेजों ने भागे हुए राघोबा को सूरतमें शरण दी और उसके बाद मराठोंके साथ एक लड़ाई शुरू की जो सात वर्षों तक चलती रही और ब्रिटिश-भारतके इतिहासमें प्रथम मराठा युद्धके नामसे प्रसिद्ध हुई।

६

महादाजी सिन्धिया और नाना फड़नीस

१. मराठा इतिहास के तीन काल.

दैवयोगसे दो व्यक्ति पानीपतके प्राणघातक युद्धक्षेत्रसे अपनी जान बचाकर निकल भागे थे। अपनी व्यक्तिगत योग्यता एवं चरित्रके बलसे उन दोनोंने शीघ्र ही असाधारण ख्याति प्राप्त कर ली, और लगभग उस समय तक बराबर मराठा राज्यके रक्षक बने रहे जब तक कि बेसीनकी संधि द्वारा उसका पतन नहीं हो गया। नियमपूर्वक तो मराठा राज्यका अन्त १८१८ में हुआ, पर वास्तवमें उसकी स्वतंत्रताका नाश बेसीनकी संधिसे (१८०२) हुआ, जिसके अनुसार मराठा राज्यके अधिष्ठाता के रूपमें बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजोंकी प्रभुता स्वीकार कर ली। यदि उसमें बादको आनेवाली कठिनाइयोंका सामना करने तथा अन्य लोगोंकी तरह इच्छा और प्रसन्नता से अंग्रेजोंका आधिपत्य स्वीकार कर लेने के लिए आवश्यक विवेक बुद्धि होती तो सम्भवतः ग्वालियर, इन्दोर और बड़ोदा के वर्तमान महाराजाओंके समान वह भी अपनी राजधानी पूना में एक अधीनस्थ शासकके रूपमें राज्य करता रहता। इसलिए हम लोगों को ३१ दिसम्बर १८०२ से मराठा राज्यका अन्त मान लेना चाहिए, और उसी हिसाबसे अपने विषयका विभाजन कर लेना चाहिए। यदि मैं शिवाजीके हाथों होने वाले मराठा स्वराज्यके आरम्भकी गणना १७ वीं शतीके मध्यमें कहीं से करूं, मान लीजिए १६५३* से, तो १७१३ तक के पहले साठ वर्षोंके युग पर, जब पेशवाका

* १७ जुलाई १६५२ को लिखे हुए एक पत्रमें शिवाजी घोषित करता है कि उसका 'स्वराज्य' एक पूर्ण तथ्य है। —पत्रसार संग्रह नं० ६४२

घटनाओंके क्रमके अनुसार नाना और महादाजी की जीवनवृत्तियां दो मुख्य कालों में विभाजित है, १७७४ से १७८३ तक पहला काल जो प्रथम मराठा युद्धके नामसे प्रसिद्ध है, और १७८४—९४ तक दूसरा काल, जब महादाजी ने खुल्लमखुल्ला पुरानी गुरीला युद्ध पद्धतिको छोड़कर, डी बोगने (De Boigne) के निर्देशन में—जिसे दो योरोपीय युद्धोंका अनुभव था, और जो उस समय भारतका सर्वश्रेष्ठ योरोपियन साहसी योद्धा था, योरोपीय ढंगकी एक नवसेना का निर्माण किया,—राजपूत राजाओंको जीत लिया, दिल्ली पर अधिकार कर लिया, और सम्राट्को गुलाम क़ादिरके निन्द्य क्रूर कर्मोंसे बचानेके बाद अपने संरक्षणमें ले लिया। इस प्रकार महादाजी ने पूरे भारतमें एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया और ठाटबाट तथा सम्मान सहित पूना लौट आया। पर दुर्भाग्यसे अपनी जन्म भूमिमें आकर शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। नाना और महादाजी दो ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने नारायणराव की मृत्युके पश्चात् राघोबा द्वारा अंग्रेजों को सहायता होने पर मराठा शक्तिकी रक्षा की।

जिन्होंने तत्कालीन योरोपीय इतिहासका अध्ययन किया है और भारतमें वारेन हेस्टिंग्ज की जीवनवृत्तिको ध्यानसे देखा है, वे तुरन्त इस बातका अनुभव कर सकते हैं कि प्रथम मराठा-युद्ध, जिसका समय वही है जो अमरीका के स्वतंत्रता युद्धका, किस प्रकार विदेशी राजनीतिसे प्रभावित हुआ, क्योंकि फ्रांसीसी जलसेना ने कुछ समयके लिए अपना खोया हुआ प्रभाव पुनः प्राप्त कर लिया था जिसने अंग्रेजोंको उनके विश्व-व्यापी युद्धमें बड़ा चिन्तित कर दिया था। जैसा हम जानते हैं, १७५६ में सप्तवर्षीय युद्धके समय अंग्रेजोंकी विश्व-शक्ति बनने की महत्वाकांक्षा जाग उठी, और युद्धका अन्त होनेपर उन्होंने १७६३ में पेरिसकी सन्धि द्वारा अपनी नाविक प्रभुता स्थापित कर ली। अगले दस वर्षोंमें उनकी महत्वाकांक्षा अवरुद्ध रही, पर पूना में पेशवा की हत्या होनेसे वह पुनः जाग उठी। १७७४ में उन्होंने मर्यादाहीन ढंगसे पेशवा के अधिकृत दुर्ग थाना पर आक्रमण करके उसके ऊपर अधिकार जमा लिया और इस प्रकार उपर्युक्त दुर्घटना से उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। अगले साल नेल्सन, जो उस समय बिल्कुल अज्ञात पुरुष था, पूर्वी समुद्रमें नाविक विस्तार करनेकी आशा से बम्बई आया, और सम्भवतः वारेन हेस्टिंग्ज तथा भारतके अन्य अंग्रेज अफ़सरोंको उससे बड़ा प्रोत्साहन मिला। परन्तु अमरीका के स्वतंत्रता-युद्धके ज़मानेमें दुनिया के समस्त भागोंमें अंग्रेजोंकी महत्वाकांक्षा को धक्का लगा। थोड़े समयके लिए फ़्रांसीसी जल-सेना अंग्रेजी जलसेना की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हो गई थी।

इस कालके मराठा इतिहासको उचित रूपमें समझनेके लिए, विद्यार्थीको ब्रिटिश राजनीतिका अन्तर्राष्ट्रीय रूप अपने ध्यानमें रखना जरूरी है। सर अल्फ्रेड लायल की निम्नलिखित पंक्तियोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाना और महादाजी ने इस महासंकटके समय मराठोंकी स्वतंत्रताको कैसे बचाया—"१७७६ में योरोपीय राजनीतिके एक मोड़ ने भारतकी स्थिति को यथार्थमें प्रभावित किया। १७७७ में एक फ्रांसीसी एजेन्ट पूना पहुंचा। उसने मराठोंके साथ सन्धि करनेका प्रस्ताव रखा, और बदलेमें अंग्रेजोंके विरुद्ध उन्हें फ्रांसीसी सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की।" उस समय मराठे अंग्रेजोंकी बराबरी कर सकते थे और लगभग शताब्दीके अन्त तक उनकी शक्ति इतनी ही बनी रही। १७८० की ग्रीष्म ऋतु तक भारतमें अंग्रेजोंकी हालत बहुत गिर चुकी थी। मराठोंका संगठन इतना जबर्दस्त था कि उसे हिलाना सम्भव न था। भारतकी राजधानीमें उन्होंने जो स्थिति प्राप्त कर ली थी उसके कारण वे अंग्रेजोंके तीनों अलग-अलग अहातोंको धमकानेमें समर्थ थे। रघुनाथराव को अंग्रेजों ने जो सहारा दिया वह एक विपत्तिजनक सौदा रहा और अन्तमें कलंकपूर्ण असफलता के सिवा उनके हाथ कुछ भी न लगा। हैदरअली मराठोंके साथ हो गया और अंग्रेजों के विरुद्ध नाना फड़नीस द्वारा की गई त्रि-राज्य-संधिमें निजामको भी शामिल कर लिया। सिन्धिया बड़ी तेजीके साथ मराठा संघका सबसे अधिक शक्तिशाली सर्दार होता जा रहा था। अगले वर्ष ऐडमिरल सफ़रेन, जो फ्रांसका सर्वश्रेष्ठ ऐडमिरल माना जाता है, एक बड़ा-सा जहाजी बेड़ा लेकर भारत पहुंचा। इसी बीच इंगलैंड और फ्रांसके बीच संधि हो जानेकी खबर आ जानेके कारण अंग्रेजोंकी स्थिति संभल गई और कष्टकारक मराठा-युद्धका अन्त हो गया। इस युद्धके दौरानमें अंग्रेजोंकी शक्तिमें कुछ अचानक परिवर्तन हुए।

१. दोनों नेताओंने प्रथम मराठा-युद्धको किस प्रकार जीता.

१७७३ में, जिसके बारेमें हम इस समय बात कर रहे हैं, रेग्युलेटिंग ऐक्ट के द्वारा भारतके समस्त ब्रिटिश अहाते कलकत्ते के संयुक्त नियंत्रणमें आ गये। वारेन हेस्टिंग्ज गवर्नर-जेनरल नियुक्त कर दिया गया और उसकी सहायता करनेके लिए चार सदस्योंकी एक कौंसिल बना दी गई। दोनोंके बीच सुनेआम विरोध पैदा हो गया जिसका मराठोंके भाग्य पर कुछ कम असर नहीं पड़ा। उसके कारण उस काल की घटनाओंका क्रम इतना गड़बड़ और जटिल हो गया है कि भारतीय मामलोंको

लम्बा और दुबला, रंग पक्का, चेहरा लंबा, आंखें बड़ी और तेज, और नाक लम्बी थी। महादाजी जातिका क्षत्रिय था। उसका कद मामूली, रंग सांवला, शरीर गठा और हृष्ट पुष्ट था। देखनेमें वह अपने समयका एक आदर्शभूत मराठा सैनिक जान पड़ता था। नाना स्वभावसे कठोर और गम्भीर, व्यवस्थित और परिश्रमी, संयमपूर्वक बातचीत और कार्य करनेवाला था। उसके पास कोई आसानीसे न पहुंच पाता था। वह न तो कभी कोई खेल खेलता और न ही चार आदमियोंके साथ बैठकर मनबहलाव करता था। उसे किसीने हंसते हुए नहीं देखा। स्वास्थ्यसे भी वह बड़ा कमजोर था और जरा में उसकी तबियत बिगड़ जाती थी। दूसरी ओर महादाजी स्वभावसे हंसमुख और मसखरा था। उसके पास हर समय आदमियों की भीड़ लगी रहती थी। वह सबके साथ बात-चीत और हंसी मजाक करता था और सभाके बीच बैठकर उसे बड़ा मजा आता था। वह सलाह तो सबकी लेता, पर हमेशा इतना सतर्क रहता कि किसीको सही बात न मालूम हो पाती और दूसरे लोग उसके असली इरादों या योजनाओंकी थाह न पा सकते थे। वास्तवमें वह नाना का बिल्कुल उल्टा था। महादाजीके विषय में यह वर्णन मिलता है कि वह एक बड़े से तम्बूमें क्लर्कों और अनुचरों, सहायकों और राजदूतोंके बीच बैठा करता था। वह सबसे खुल्लमखुल्ला प्रश्न करता, आये हुए पत्रों और समाचारोंको सुनता और जानेवाले पत्रोंको लिखाता और साथ ही साथ आज्ञाएं जारी करता जाता था। नाना अक्सर महादाजी को अपने विचारों को गुप्त न रखने और राज्यके महत्वपूर्ण मामलों के ऊपर खुली सभा में वादविवाद करने के लिए घुड़का करता था। लोग, यहां तक कि नजदीकी रिश्तेदार और खास नौकर तक नानाके पास जाते डरते थे। वह दंड देनेमें कठोर था। एक समयमें एक ही व्यक्ति से मिलता और बातचीत करता था। इस नियमका उल्लंघन केवल उस समय होता था जबकि खुल्लमखुल्ला वादविवाद करने या सम्मेलन बुलानेका पहले से ही प्रबन्ध कर लिया जाता था। यहां तक कि नाना का परम मित्र हरीपन्त फड़के भी उसके पास कोई प्रस्ताव या सुझाव ले आने के पूर्व उसके मनकी सता का पता लगा लेता था। सामान्य घटना की किसी विशेष बातके सम्बन्धमें दोनों का अन्तर सबसे अधिक दिखाई दे जाता था। बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर महादाजी शान्त और निश्चल रहता था। वह अपने अन्तरतम का उद्वेग (घबराहट) किसी समय भी प्रकट न होने देता था। जब कठोर विपदाओं अथवा उसकी विशाल सेना के दशम भाग के नाश का समाचार उसके पास पहुंचा, तब भी वह हमेशा की तरह हंसी-मजाक करता रहा, मानों कुछ

हुआ हो न हो। इस निर्भयता एवं शांत निर्णयके कारण वह ऐसी बड़ी-बड़ी मुसीबतों और दुःखों को सफलतापूर्वक झेल ले जाता था जो किसी साधारण पुरुषके उत्साह को चूर-चूर कर देते। नाना डरपोक और जल्दी से उत्तेजित हो जानेवाला था। जब कभी ऐसी समस्याएँ आ जातीं जिनका हल तुरन्त निकालना होता था तो प्रायः वह अपनी व्यग्रता को छिपानेमें असमर्थ रहता था। पहले सखाराम बापू और बादको हरीपंत फड़के नाना के व्याकुल हृदयको शान्त करनेमें सहायता करते और खतरनाक स्थितियों में उसे उत्साहित किया करते थे। पर महादाजीके विपरीत, नाना साधारणतः अपने व्यवहारमें तर्कपूर्ण एवं न्यायशील रहता था। वह किसीके साथ बुराई या छल-कपट करने से डरता था, अपने वचनोंका पालन करनेमें दृढ़ और समय का पाबंद था, और हर एकके साथ उदारता दिखानेके लिए तैयार न रहता था। आमतौर पर वह परिणामके लिए अधीर हो उठता था। उसमें महादाजी का आत्म-विश्वास न था, परन्तु वह सबसे अलग-अलग सलाह लेता और तब स्वयं अपने विचार-पूर्ण निर्णयके अनुसार कार्य करता था। दूसरी ओर, महादाजी धैर्यशील और साहसी था, विपत्तिके समय उसके चेहरे पर शिकन न आने पाती थी। वह प्रयत्नशील और विचारवान् था, पर बहुधा क्रोधसे उत्तेजित हो उठता था। वह दूसरोंकी कमजोरियों को ढूंढ निकालने और उनसे अधिक से अधिक लाभ उठाने को हमेशा तैयार रहता था, जैसा कि हम नाना, राघोबा, सखाराम बापू या तुकोजी और अहिल्याबाई होल्कर के प्रति होनेवाले उसके व्यवहार से जान सकते हैं। वह सभीके साथ मित्रवत् भाव दिखाता, पर अपनी बातको पूरा करने या गलत काम करनेमें किसी प्रकार की शंका न करता, बशर्ते कि उसका अपना कोई मतलब सिद्ध होता हुआ दिखाई पड़ता हो।

वह एक महान् राजनीतिज्ञ कहा जा सकता है, जिसमें उसके शत्रु तक विश्वास रखते थे। नाना के पास बालाजीराव या माधवराव जैसा उदार हृदय न था और न ही उनकी तरह उसे कोई प्यार करता था। वह तो कठोरता के साथ काम लेना भर जानता था। तब वह भला दूसरों का प्रेमपात्र बनने की आशा ही कैसे कर सकता था? इतना ही नहीं, उसे तो प्रायः अपने मारे जानेका खतरा लगा रहता था, और उसने स्वयं ऐसे कोई बीस मौके बताये हैं जबकि उसको मारनेका प्रयास किया गया, पर दैवयोगसे उसका बाल बांका न हुआ। पेशवाओंके साथ पहले कभी ऐसी कोई बात नहीं हुई। गुप्तरूपसे हर बातका पता लगानेकी कठोर प्रणालीके कारण नाना के लिए मित्रों और शत्रुओं को पहिचानना असम्भव हो गया था। इसीलिए घासीराम कोतवाल

या बलवन्तराव नागनाथ जैसे उसके विश्वसनीय अनुचर, जिनके ऊपर वह भरोसा करता था, अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति करनेमें नहीं चूकते थे। सचमुच नारायणराव की हत्या के बाद आठ या दस साल तक पूना के वातावरणमें अनिश्चय एवं अविश्वास इतनी अधिक मात्रा में बने रहे कि वह उन लोगोंके लिए भी बिल्कुल असह्य हो उठा जिनका राजकाजके मामलों से कोई सरोकार न था। लोग अपनी जान और मालको बिल्कुल अरक्षित समझने लगे।

नाना में सैनिक नेतृत्व का अभाव था, जबकि महादाजी का मन लिखापढ़ीके काममें या हिसाब-किताब रखने और छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान देने में न लगता था। नाना इन सभी में दक्ष था। वास्तवमें, नाना के कागज-पत्र उसके समयमें इस तरह से क्रमबद्ध करके रखने पड़ते थे कि उन्हें देखकर परिश्रम और यथार्थता के लिए न थकनेवाली उसकी कार्यक्षमता का आभास मिल जाता था। स्वयं नाना के हाथका लिखा हुआ एक लम्बा खण्डित कागज विद्यमान है जिसे के. एस. «पत्रेंन यादी» में मुद्रित किया गया है। इसमें फरवरी १७८३ में युवक पेशवा के विवाह-महोत्सवके सम्बन्धमें अधूरी आज्ञाओं और प्रबन्धों का वर्णन दिया है। उसे देखकर यह पता चलता है कि नाना छोटी-छोटी बातों तक के लिए कितना सचेत रहता था। जैसे उदाहरणके लिए वह खानेकी उन तमाम चीजों और उनके क्रमका जिक्र करता है जो हर दिन अलग-अलग मौकोंके लिए तैयार करानी थीं। साथ ही वह इस सम्बन्धमें भी छोटे से छोटा आदेश देता है कि वे चीजें कैसे रखी जायगी और कैसे परोसी जायगी। महादाजी में इतनी यथार्थता न थी, और उसके नीचे काम करनेवाले निःशंक कर्मचारी और नौकर अक्सर उसे धोखा दे देते थे। तब वह उनसे निर्दयता के साथ बदला लेने पर उतारू हो जाता था। यद्यपि प्रारम्भमें ये विभिन्नताएँ केवल मात्र स्वभावही थीं, तथापि आगे चलकर उन्होंने जोर पकड़ लिया और कुछ समयके लिए हिन्दुस्तान भर में मराठा राजनीति पर उनका प्रभाव पड़ा। नाना कूटनीतिज्ञता में कुशल था और महादाजी सैनिक मामलों में। जबतक दोनोंने पारस्परिक सहयोगसे काम किया और एक दूसरेके विश्वासपात्र बने रहे, तब उन्होंने बड़े-बड़े काम कर डाले; पर वे प्रायः एक दूसरेसे जलने लगते थे और उस दशामें मनमाना काम कर बैठते थे जिसका असर मराठोंके प्रारब्ध के ऊपर बुरा पड़ता था। नाना ने अधिकांश अपना ध्यान दक्षिण में सीमित रखा और महादाजी ने उत्तर में। दस वर्षसे अधिक समय तक वे नहीं मिले और व्यक्तिगत रूपसे विचारोंका कोई आदान-प्रदान नहीं किया। उनके बीच समय-समय पर पत्र-व्यव-

सार बनता रहता था; पर सब कुछ होते हुए भी, लिखित बातचीत, जिसमें अक्सर झुंझलाहट पैदा करने वाली, शाब्दिक और निरन्तर चलनेवाली व्याख्या की मांग होती थी, एक विशाल और बिखरे हुए राज्यके बढ़ते हुए समस्त विभिन्न विषयों की व्यवस्था न कर सकती थी, और उसके फलस्वरूप सारे काम करनेवालों को कुढ़न और निराशा होती थी। उन २० वर्षोंमें जबकि रंगमंच के प्रधान अभिनेताओंके रूपमें ये दोनों व्यक्ति मराठा मामलों का संचालन करते थे, विभिन्न व्यक्तियों और दलोंके बीच जो लिखा-पढ़ी हुई, उसमें से सैकड़ों पत्र और काग़ज़ात मुद्रित किये गये हैं। उन्हें देखकर वह असमानता स्पष्ट हो जाती है जिसकी ओर मैं ऊपर संकेत कर चुका हूं।

५. नाना की नीतिके दोष.

व्यक्तिगत असमानता इस तरहसे स्पष्ट हो जाने पर, अब मैं उन बातोंकी विवेचना करना आरम्भ करूंगा जिन्हें मैं नाना की नीतिके दोष समझता हूं।

(अ) अनुरंजनात्मक प्रवृत्तिका अभाव.

नाना ने उस मंत्रिमंडलके एक सदस्यके रूपमें अपना कार्य आरम्भ किया जो *बारा-भाइयो* या "बारह भाइयों" की सभा कहलाता था। आरम्भमें अनुभवी सखाराम बापू ही उसका एकमात्र मुख्य कार्यकर्ता था। नाना का चचेरा भाई मरोबा त्रिम्बकराव पिठे, हरीपन्त फड़के, महादाजी सिन्धिया, तुकोजी होल्कर, भवनराव प्रतिनिधि, मालोजी घोरपड़े, (सच तो यह है कि उस समयके अधिकांश प्रमुख व्यक्ति) इस सभा के सदस्य समझे जाते थे। यह सभा जिन आदर्शोंके आधार पर बनाई गई थी, वे यदि क़ायम रखे जाते तो वह एक शक्तिशाली और स्थायी फल देनेवाली संस्था हो सकती थी। शायद राष्ट्रने नाना के व्यक्तिगत शासनके बजाय एक मज़बूत और बुद्धिमान् मंत्रिमंडलके शासनको अधिक तत्परता के साथ स्वीकार कर लिया होता। एक तानाशाहके व्यक्तिगत शासनके स्थान पर वैधानिक-शासन-प्रणाली का प्रयोग करनेके लिए सचमुच यह एक अपूर्व अवसर था। नाना ने हेस्टिंग्ज की कलकत्ता कौंसिल, और हॉर्नबी (Hornby) की बम्बई कौंसिल का, पूरा-पूरा हाल था जहां सारे मामले बहुमत सिद्धान्तके आधार पर तय होते थे। छत्रपति और पेशवा दोनों

ही असफल सिद्ध हो चुके थे, इसलिए अपने अतीतके अनुभव एवं पूर्वदर्शिता के अनुसार नाना को मनमें यह निश्चय कर लेना चाहिए था कि मराठा प्रशासनके लिए «बारा भाई» कौंसिलको जारी रखनेमें ही बुद्धिमानी की बात होगी। इस दिशा में क़दम उठाने और अयोग्य सदस्योंके स्थान पर अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को नियुक्त करनेके बजाय, उसने धीरे-धीरे एक-एक करके सारे सदस्य हटा दिये, और सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथमें केन्द्रित कर ली। उसके दो सर्वोत्कृष्ट साथी सखाराम बापू और मरोबा फड़नीस अपने पदों से अलग कर दिये गये और राजद्रोहका अपराध लगाकर बंदी बना लिये गये। अनुरंजनात्मक प्रवृत्ति ऐसे विषयों के लिए अत्यधिक आवश्यक थी। उससे ओतप्रोत होते हुए भी सखाराम बापू को परिस्थितियों के वश होकर सभी दलोंके साथ, यहां तक कि युद्ध कालमें शत्रुओं के साथ तक, अलग-अलग व्यवहार करनेके लिए बाध्य होना पड़ता था, जैसे उदाहरणके लिए राघोबा निज़ाम, हैदरअली और अंग्रेजोंके साथ। नाना ने द्वैध आचरण या राजद्रोहके रूपमें इसका तिरस्कार किया, और उसे बन्दी करा लिया। यदि बापू और मरोबा दोनोंको हटाना जरूरी ही था तो कमसे कम उनकी जगह उसे नये सदस्य रख लेने चाहिए थे। पर दो वर्षों बाद तो «बारा-भाई» का नाम तक बाकी नहीं दिखाई पड़ता है। उन दिनों राजद्रोह का एक विशेष अर्थ लगाया जाता था। निश्चय ही नारायणरावकी हत्या राघोबा ने करवाई थी, तो भी पेशवा-परिवार में वही अकेला जीवित बचा था, और सारे दोषोंके रहते भी, अतीतमें उसके द्वारा की गई सेवाओंके लिए बहुतसे लोगोंके मनमें उसके प्रति एक प्रकारका आदर भाव था। कुछ हृदयहीन आत्माओं को छोड़कर, जो स्वर्गीय पेशवा के हत्यारोंको कठोर दंड दिलाने पर उतारू थे, महाराष्ट्रमें जनमतका एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा था जो उस घटना को अधिक सौम्यभाव से देखता और अनुरंजनात्मक नीतिका समर्थन करता था। बहुतसे लोगोंको इससे कोई मतलब न था कि उनके ऊपर राघोबा शासन करे या नवजात शिशु; वे निश्चय ही यह चाहते थे कि राघोबा को उसके पदके अनुरूप सुखके सारे साधन उपलब्ध हों। अपने आप साधनों पर छोड़ दिये जाने पर, और परिणामोंकी चिन्ता किये बिना, राघोबा ने सर्दारोंको बहका कर, अपना एक मजबूत दल बना लिया। उसने ऐसे लोगोंको विशेषरूपसे अपनी तरफ़ मिला लिया जो पहले सवाईके साथ उसकी सेवा कर चुके थे। इन परिस्थितियोंमें सखाराम बापू में विपत्तिजनक युद्धको रोकने और समझौता करनेकी

नीति द्वारा साधारण प्रशासनकी पुनः स्थापना करनेकी भरसक चेष्टा की। ऐसा करने में वह इस बात पर जोर देता रहा कि हठी पेशवा के प्रति कठोर उपाय न बर्ते जायें। महादाजी सिंधिया और दूसरे लोग और सखाराम बापू तक राघोबा के विरुद्ध कठोर उपायोंका प्रयोग उचित न समझते थे। इसीलिए, ये लोग नाना को देशद्रोही और दंडके भागी जान पड़ते थे। महादाजीके मामलों में नाना असहाय था, अन्यथा यदि उसके पास साधन होते, तो उसने उसे उसी तरहसे दंड दिया होता जैसे कि उसने सखाराम बापू को दिया था। प्रत्यक्ष रूपसे यह नाना की राजनीतिज्ञता का दोष था। ऐसे मामलोंमें व्यावहारिक बुद्धिसे काम लेकर क्षमा कर देना ही अच्छा होता है। पर नाना दंड देनेकी विधियोंमें निष्ठुर था। जब नारायणरावके पुत्र पैदा हो गया तब राघोबाके सारे बहाने खतम हो गये। उस समय उसे एक भगेड़ू के रूपमें भाग जाने देना चाहिए था। पर ऐसा न करके उसका लगातार पीछा किया गया और इच्छा न रहते हुए भी उसे भागकर अंग्रेजोंकी शरणमें जाना पड़ा, जिसके कारण युद्ध छिड़ा, जिसमें मराठोंकी प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा। यहां पर तो बस इतना ही काफी था कि उसकी शक्ति चूर-चूर कर दी जाती, जैसा कि १८५७ के विद्रोहके मामलेमें "रानीकी घोषणा" ने किया था। यदि «बारा-भाई» ने एक घोषणा जारी करके लोगोंसे अपनी वृत्तियोंमें वापस लौट आनेके लिए कहा होता और भगेड़ू राघोबा के साथ सहानुभूति रखने के विरुद्ध उन्हें चेतावनी दी होती तो सम्भवतः सारे मामले चुपचाप तय हो जाते और राघोबा को बाहर कोई समर्थन न मिलता। बहुतसे सरदारों और प्रभावशाली नेताओंने अपनी व्यक्तिगत रुचि को ध्यान में रखते हुए जब जैसी आवश्यकता हुई तब उस तरह से काम किया, और जिस पक्षसे उन्हें सबसे अधिक लाभ होता हुआ जान पड़ा उसीकी ओर हो गये। दूसरी ओर नाना ने गुप्तचरोंकी सहायता से राघोबा के एक-एक अनुयायीकी सारी बातोंका पता लगा लिया, उसकी सम्पत्ति और मकान जब्त कर लिये, और उनके घरवालों तथा रिश्तेदारों को सजाएं दीं, जिसके कारण लोग बरसोंके लिए इस बुरी तरहसे भड़क उठे कि साधारण प्रशासनका काम एक तरहसे रुक गया। शायद बापूकी अनुरंजनात्मक नीति यहां पर अधिक उपयोगी सिद्ध हुई होती। उसने पेशवा के परिवारमें स्नेह भावको पुनः स्थापना कर दी होती, और स्थायी रूपसे किसी प्रकार का मनोमालिन्य शेष न रह गया होता। सम्भवतः बाजीराव द्वितीय का रुख, बड़ा होते-होते, न केवल नाना के प्रति वरन् और सभीके प्रति, जिनसे बादको उसने बदला लेनेकी चेष्टा की, कुछ और ही हुआ होता।

ही असफल सिद्ध हो चुके थे, इसलिए अपने अतीतके अनुभव एवं पूर्वदर्शिता के अनुसार नाना को मनमें यह निश्चय कर लेना चाहिए था कि मराठा प्रशासनके लिए «बारा भाई» कौंसिलको जारी रखनेमें ही बुद्धिमानी की बात होगी। इस दिशा में कदम उठाने और अयोग्य सदस्योंके स्थान पर अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को नियुक्त करनेके बजाय, उसने धीरे-धीरे एक-एक करके सारे सदस्य हटा दिये, और सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथमें केन्द्रित कर ली। उसके दो सर्वोत्कृष्ट साथी सखाराम बापू और मरोबा फड़नीस अपने पदों से अलग कर दिये गये और राजद्रोहका अपराध लगाकर बंदी बना लिये गये। अनुरंजनात्मक प्रवृत्ति ऐसे विषयों के लिए अत्यधिक आवश्यक थी। उससे ओतप्रोत होते हुए भी सखाराम बापू को परिस्थितियों के वश होकर सभी दलोंके साथ, यहां तक कि युद्ध कालमें शत्रुओं के साथ तक, अलग-अलग व्यवहार करनेके लिए बाध्य होना पड़ता था, जैसे उदाहरणके लिए राघोबा निज़ाम, हैदरअली और अंग्रेजोंके साथ। नाना ने इस आचरण या राजद्रोहके रूपमें इसका तिरस्कार किया, और उसे बन्दी करा लिया। यदि बापू और मरोबा दोनोंको हटाना जरूरी ही था तो कमसे कम उनकी जगह उसे नये सदस्य रख लेने चाहिए थे। पर दो वर्षों बाद तो «बारा-भाई» का नाम तक बाकी नहीं दिखाई पड़ता है। उन दिनों राजद्रोह का एक विशेष अर्थ लगाया जाता था। निश्चय ही नारायणरावकी हत्या राघोबा ने करवाई थी, तो भी पेशवा-परिवार में वही अकेला जीवित बचा था, और सारे दोषोंके रहते भी, अतीतमें उसके द्वारा की गई सेवाओंके लिए बहुतसे लोगोंके मनमें उसके प्रति एक प्रकारका आदर भाव था। कुछ हृदयहीन आत्माओं को छोड़कर, जो स्वर्गीय पेशवा के हत्यारोंको कठोर दंड दिलाने पर उतारू थे, महाराष्ट्रमें जनमतका एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा था जो उस घटना को अधिक सौम्यभाव से देखता और अनुरंजनात्मक नीतिका समर्थन करता था। बहुतसे लोगोंको इससे कोई मतलब न था कि उनके ऊपर राघोबा शासन करे या नवजात शिशु; वे निश्चय ही यह चाहते थे कि राघोबा को उसके पदके अनुरूप सुखके सारे साधन उपलब्ध हों। अपने आप साधनों पर छोड़ दिये जाने पर, और परिणामोंकी चिन्ता किये बिना, राघोबा ने सर्दारोंको बहका कर, अपना एक मजबूत दल बना लिया। उसने ऐसे लोगोंको विशेषरूपसे अपनी तरफ़ मिला लिया जो पहले सवाईके साथ उसको सेवा कर चुके थे। इन परिस्थितियोंमें सखाराम बापू ने विपत्तिजनक युद्धको रोकने और समझौता करनेकी

नीतिद्वारा साधारण प्रशासनकी पुनः स्थापना करनेकी भरसक चेष्टा की। ऐसा करने में वह इस बात पर ज़ोर देता रहा कि हठी पेशवा के प्रति कठोर उपाय न बर्ते जायें। महादाजी सिंधिया और दूसरे लोग और सखाराम बापू तक राघोबा के विरुद्ध कठोर उपायोंका प्रयोग उचित न समझते थे। इसीलिए, ये लोग नाना को देशद्रोही और दंडके भागी जान पड़ते थे। महादाजीके मामलों में नाना असहाय था, अन्यथा यदि उसके पास साधन होते, तो उसने उसे उसी तरहसे दंड दिया होता जैसे कि उसने सखाराम बापू को दिया था। प्रत्यक्ष रूपसे यह नाना की राजनीतिज्ञता का दोष था। ऐसे मामलोंमें व्यावहारिक बुद्धिसे काम लेकर क्षमा कर देना ही अच्छा होता है। पर नाना दंड देनेकी विधियोंमें निष्ठुर था। जब नारायणरावके पुत्र पैदा हो गया तब राघोबाके सारे बहाने खतम हो गये। उस समय उसे एक भगोड़ के रूपमें भाग जाने देना चाहिए था। पर ऐसा न करके उसका लगातार पीछा किया गया और इच्छा न रहते हुए भी उसे भागकर अंग्रेज़ोंकी शरणमें जाना पड़ा, जिसके कारण युद्ध छिड़ा, जिसमें मराठोंकी प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा। यहां पर तो बस इतना ही काफ़ी था कि उसकी शक्ति चूर-चूर कर दी जाती, जैसा कि १८५७ के विद्रोहके मामलेमें "रानीकी घोषणा" ने किया था। यदि «बारा-भाई» ने एक घोषणा जारी करके लोगोंसे अपनी वृत्तियोंमें वापस लौट आनेके लिए कहा होता और भगोड़ राघोबा के साथ सहानुभूति रखने के विरुद्ध उन्हें चेतावनी दी होती तो सम्भवतः सारे मामले चुपचाप तय हो जाते और राघोबा को बाहर कोई समर्थन न मिलता। बहुतसे सरदारों और प्रभावशाली नेताओंने अपनी व्यक्तिगत रुचिको ध्यान में रखते हुए जब जैसी आवश्यकता हुई तब उस तरह से काम किया, और जिस पक्षसे उन्हें सबसे अधिक लाभ होता हुआ जान पड़ा उसीकी ओर हो गये। दूसरी ओर नाना ने गुप्तचरोंकी सहायता से राघोबा के एक-एक अनुयायीको सारी बातोंका पता लगा लिया, उसकी सम्पत्ति और मकान ज़ब्त कर लिये, और उनके घरवालों तथा रिश्तेदारों को सज़ाएं दीं, जिसके कारण लोग बरसोंके लिए इस बुरी तरहसे भड़क उठे कि साधारण प्रशासनका काम एक तरहसे रुक गया। शायद बापूकी अनुरंजनात्मक नीति यहां पर अधिक उपयोगी सिद्ध हुई होती। उसने पेशवा के परिवारमें स्नेह भावको पुनः स्थापना कर दी होती, और स्थायी रूपसे किसी प्रकार का मनोमालिन्य शेष न रह गया होता। सम्भवतः बाजीराव द्वितीय का रुख, बड़ा होते-होते, न केवल नाना के प्रति वरन् और सभीके प्रति, जिससे बादको उसने बदला लेनेकी चेष्टा की, कुछ और ही हुआ होता।

इतिहासके छात्रोंको नाना की नीतिके इस अंगकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

(ब) उत्तरमें अंग्रेजोंके दबाव को न समझ पाना.

सालबाई की सन्धि करवाने में महादाजी ने जो प्रधानता पा ली उससे नाना को बड़ी कुढन हुई। वह इस बातको न समझ सका कि महादाजी उत्तर क्यों चला गया और दक्षिणकी लड़ाई का भार दूसरोंके ऊपर छोड़कर दूर देश मालवामें उसने अपने को क्यों जमा लिया। सैनिक मामलोंसे परिचित न होनेके कारण नाना इस बातको नहीं समझ सका कि भारतीय राजनीतिका केन्द्र तेजीके साथ दक्षिणसे हट कर उत्तर में स्थापित हो रहा था। नाना अपने एजेंटों और गुप्तचरोंके जरिये सैकड़ो मील दूर पर होनेवाले आन्दोलनों और घटनाओंका रत्ती-रत्ती पता लगा लेनेमें तो चतुर था, पर वह उस भारी सैनिक दबावको न समझ सका, जिसे बढ़ती हुई अंग्रेजी शक्ति, उत्तर और पूर्वकी ओर भारतके भविष्य पर डालने जा रही थी। अंग्रेजों ने वहां पर धीरे-धीरे अपनी स्थिति दृढ़ कर ली ताकि वे और आगे बढ़ सकें और उपयुक्त अवसर पाते ही मराठा शक्ति को अपने जालमें फंसा सकें। भारतीयोंमें केवल महादाजी ही ऐसा था जिसने अंग्रेजों की सैनिक तैयारियोंके व्यक्तिगत एवं व्यावहारिक अनुभव से इस दबावको समझ लिया। नाना बराबर महादाजीसे दक्षिण लौट आनेका हठ करता रहा था, केवल इसलिए नहीं कि वह दक्खिनमें राष्ट्रीय शत्रुओंके विरुद्ध युद्ध करे, वरन् मुख्यरूपसे इसलिए कि वह स्वतंत्रतापूर्वक कोई कदम न उठाने पाये। महादाजी ने यमुना नदीसे बुरहानपुर और वहांसे सूरत तक अंग्रेजोंकी विजयपताका फहराती हुई जेनरल गोडार्ड (General Goddard) की प्रसिद्ध सेना के मार्च को बड़े ध्यानसे देखा था। अंग्रेजोंकी विजयने बातके टुकड़ेकी नाईं पूरे उत्तरी भारत के दो बराबर-बराबर खण्ड कर दिये। तेलीगांव (Talegaum) की लड़ाईमें अंग्रेजी बन्दूकोंने जो प्रलय मचा दिया था और बेसीन तथा थाना (Thana) के ऊपर अधिकार करके अंग्रेज लोग पश्चिमी समुद्रतट पर जिस आरामके साथ शान्तिपूर्वक अपनी स्थितिको दृढ़ करने लगे, उसका महादाजीके ऊपर बड़ा गहरा असर पड़ा। शक्तिसतुलन कायम करनेके विचारसे उसने अपनेको दक्षिणसे बिल्कुल हटा लिया। वह यह जानता था कि पूना दर्बारमें, जहां बम्बईकी सरकारका जोर दुर्निवार था, अंग्रेजोंके साथ सौदा करनेकी अपेक्षा यदि वह उत्तरमें उनके साथ व्यवहार करे तो उनके साथ सन्धि करने के लिए सोच-विचारके बाद वह जो कदम उठाने जा रहा था उसमें वह सर्वोत्कृष्ट शर्तें

प्राप्त कर सकता था। विषयके ऊपर होनेवाले पर्याप्त पत्रव्यवहार से, जो इस समय प्राप्य है, यह पता लगता है कि महादाजी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि यदि वह अपनी फ़ौजोंको दक्षिणमें ले आया होता तो अंग्रेजोंने एक ही चोटमें सम्राट्को अपने अधिकारमें कर लिया होता और पूनामें मराठों के सामने मनमानी शर्तें रखी होतीं। मराठोंकी इस प्रकारकी महा-विपत्ति, जिसे महादाजी बचाना चाहता था, नाना की समझमें बाहरकी चीज थी। इसके बाद हमेशा महादाजी जो भी योजना आरम्भ करता था जिस किसी चालका सुझाव रखता उसीमें नाना को उसकी ओर से केन्द्रीय मराठा सरकार के विरुद्ध राजद्रोह का सन्देह होता। उसने अपने एजेन्टोंको खुल्लमखुल्ला महादाजी का विरोध करनेका आदेश दिया। दूसरी ओर, महादाजीने वारेन हेस्टिंग्ज के प्रति समझौता करने की नीतिका अनुसरण किया, और बंगाल, अवध, मध्यभारत तथा दिल्ली में अंग्रेजों के अभिप्रायोंको विफल करने के लिए अप्रत्यक्षरूपसे पूरी-पूरी कोशिश की। ऐसा करनेके लिए उसे बहुत दिनों तक मथुरा और ग्वालियरके बीच टिकना पड़ा, ताकि वह उनके ऊपर प्रत्यक्ष और तुरन्त रोक लगा सके। वास्तवमें निश्चितरूपसे, यह स्पष्ट हो जाता है कि नाना उत्तरकी स्थितिको नहीं समझा, और नहीं इस बातका अनुभव कर पाया कि चतुर कूटनीतिकी कितनी ही अधिक मात्रा उतनी प्रभावशाली नहीं हो सकती जितनी कि उसके साथ-साथ सैनिक बल। ज्यादा अच्छा होता कि वह स्वयं वहां जाता और उस भीषण संघर्षमें निहित खतरों और जिम्मेदारियोंमें महादाजी का हाथ बटाता। परन्तु स्वभावसे शक्की होनेके कारण, नाना हमेशा अपनी जान के लिए डरता था, और आसानीसे महादाजी के शिविरमें जानेका साहस न करता था।

यदि नाना बालक पेशवा को उत्तर ले गया होता, और अपने निजी व्यक्तित्वकी पृष्ठभूमि में रखकर, उसने महादाजीको मुक्तहस्त होकर काम करने दिया होता, तो उस समय की मराठा राजनीतिने अमित बल प्राप्त कर लिया होता। यदि होनहार बालक पेशवा को १७८७ या ८८ के लगभग, जब वह चौदह वर्ष का था, उत्तरी प्रदेशों को देखनेका मौका दिया गया होता तो वह अपनी भावी जीवनवृत्तिके लिए मूल्यवान् ढंगसे प्रशिक्षित हो जाता। पेशवाओंके परिवारमें सभी लोग बारह वर्षके लगभग क्रियाशील जीवन आरम्भ करते थे और इस प्रकारका व्यावहारिक अनुभव उस जाति के लिए सबसे अधिक स्वस्थ और आवश्यक सामग्री थी जिसके ऊपर मराठा राज्य बना हुआ था। नानाको चाहिए था कि बाहरी दुनिया को यह देखनेका मौका देता कि पेशवाओंके घरानेमें एक कमसिन स्वामी धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। ऐसा करनेसे

कुछ थोड़ा बहुत पैदा हुआ था उसे पुराने हकदार लोग, जो महादाजी के पूर्व अधिकारी थे, लेकर चले गये। दुर्भिक्षके कारण कुछ गांव निर्जन हो गये है; एक मकानमें बीस लाशें मिली जिन्हें वहासे हटानेवाला तक कोई न था; यह हालत है चम्बल और काश्मीरके बीचके देश की। आदमियोंकी भीड़ की भीड़ खानेकी खोजमें एक जगहसे दूसरी जगह जाती हुई दिखाई देती है। दुर्भिक्ष और लूटमार ने उनकी यातना को बढ़ा दिया है। ये दो दुःख तो थे ही। उनमें एक तीसरा दुःख और जुड़ गया है, वह है —महादाजी के टैक्स कलेक्टर लोग, क्योंकि ये कलक्टर अनुचित मांग करनेमें किसी तरहसे कम नहीं है। पर लाख कोशिशें करने पर भी वे नकद रुपया नहीं जमा कर सके। जहांतक विभिन्न रियासतोंके सालाना कर का सम्बन्ध है, जयपुरने कागज पर इक्कीस लाख देना मंजूर किया था। यह एक लम्बी रकम दिखाई पड़ती है, पर केवल दो लाख नकद दिया गया था और दो लाख और धीरे-धीरे जवाहरात वगैरह के रूपमें चुकाया गया था; बाकी के लिए यह तय हुआ कि वह रियासत की प्रजा से वसूल कर लिया जायगा, और उस कामके लिए २,००० सैनिक जयपुर राज्यके अन्दर भेजे गये हैं। यह तो सिर्फ एक राज्यकी दशा है। बहुतसे और राज्य हैं जो काबूमें आ ही नहीं रहे हैं। महादाजीको सम्राट् और उसकी सेनाओंका सारा खर्च अपनी जेबसे करना पड़ा। वह जितना उधार ले सकता था उतना ले चुका है, और जो कुछ अपने पास बचाया था, सब खर्च कर चुका है। यह तो वही जानें कि उसके पास और कुछ नकद है या नहीं; वह खेत उसी को देता है जो लगान के लिए सबसे ऊंची बोली बोले। दक्खिनका कोई भी आदमी इस तरहसे खेत लेनेके लिए राजी नहीं है। महादाजी एक ऐसे महाजनकी खोजमें है जो उसकी (महादाजी की) ओरसे जोतने बोनेके लिए दिये गये खेतसे वसूल की गई रकममें से हर महीने सम्राट्को रुपया देनेका वचन दे। इस समय सारे महाजनोंने असहाय दशा में होनेके कारण इस व्यावहारिक कार्य को अपने सिर लेनेसे इन्कार कर दिया है। मैं जानता हूं कि मैं क्या लिख रहा हूं; यह है आवरण रहित सत्य। स्वस्थ शासन प्रबन्ध वह है जिसमें स्वामीको कभी अभाव नहीं रहता, सेना सन्तुष्ट होती है, और रैयत सुखी रहती है। यदि ये तीनों शर्तें नहीं है तो उनकी देखभाल ईश्वर के ही हाथ है। उसकी इच्छा के आगे किसीका वश नहीं।"

यदि अपने विजयी दिनोंमें हमारे सर्वोत्कृष्ट एवं सबसे अधिक प्रसिद्ध सर्दारकी आर्थिक दशा इस तरह की थी, तो अपने पतनके युगमें मराठा शासन की क्या हालत थी, इसकी कल्पना हम आसानीसे कर सकते हैं। जैसा मैं कह चुका हूं, पहलेके चार

पेशवाओंके ६० वर्षोंके शासनकाल में दूसरी बातें थी। उपर्युक्त वर्णनसे सिर्फ यह अन्दाज़ मिल जाता है कि मराठा राज्य तेजीसे पतनकी ओर बढ़ रहा था। इस अभियोगके सम्बन्धमें कि महादाजी अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए स्वतन्त्र होनेकी चेष्टा कर रहा था, जिससे मराठा राज्यकी रुचियोंको हानि पहुंच रही थी, मुझे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला जिससे यह बात प्रमाणित हो सके। शायद इस बात का विश्वास हो जाने पर कि राज्य नष्ट होने जा रहा है, वह मामलोंके प्रबन्धमें मुक्तहस्त होनेका दावा करता था। उसने नाना की सहायता या समागमको कभी नहीं ठुकराया, क्योंकि उस (नाना) की कार्यक्षमता का ज्ञान उस (महादाजी) से अधिक किसी को नहीं था। एक चीज़ बिल्कुल साफ़ है। महादाजी ने नानाकी निष्ठा और सूक्ष्म बुद्धिमें अपनी असीम आस्था को बार-बार व्यक्त किया है। नाना का एजेन्ट सदाशिव दिनकर सितम्बर १७८८ में महादाजी के साथ अपनी भेंट का ब्योरा देते हुए लिखता है: "मुझे आपको यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि ठीक उस तरह जैसे कि एक डूबते हुए पुरुष का खोया हुआ साहस यह जानकर कि उसे बचानेके लिए कोई आ रहा है, पुनः लौट आता है, दक्षिणसे अलीबहादुरके नेतृत्वमें, समयसे धन और सेना की सहायता आ जाने पर शत्रुओं से घिरे हुए महादाजी को बड़ा सहारा मिल गया। निस्संकोच भावसे स्वीकार करके कि आड़े समयमें श्रेष्ठ बन्धु नानाके सिवा कोई काम न आया, उसने अपने असंख्य आश्रित जनों को लज्जित कर दिया। महान् वे ही हैं जो महान् कार्य करते हैं।"

७. नाना की शक्ति के ऊपर प्रतिबन्ध.

यह केवल एक शोचनीय दुर्घटना, मेरा तात्पर्य है, नारायणरावकी हत्या थी जिसने नाना को आगे कर दिया। वह अपनी दुर्बलताओंके प्रति भलीभांति सजग था। वह एक सेनानायक न था और युद्धक्षेत्रमें कभी सेनाओंका नेतृत्व ग्रहण नहीं कर सकता था। इसके लिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था, जैसे महादाजी सिन्धिया, तुकोजी होल्कर, हरीपन्त फड़के, या परशुराम भाऊ पटवर्धन आदि। यह स्थिति कितनी कमजोर होती है, इसकी कल्पना भलीभांति की जा सकती है, विशेष रूपसे उस समयको ध्यानमें रखते हुए। इन लोगोंमें नाना ने अकेले महादाजी को हठी पाया। इसलिए जब कभी महादाजी तत्परता के साथ नाना के विचारों

पुनः प्राप्त कर लिया है। पर यह तो सिर्फ एक क्षणिक वस्तु थी। खर्दा की विजयके बाद से ही होनहार पेशवा को मन्द ज्वर की बीमारी हो गई, जिसके कारण वह इतना ज्यादा कमजोर हो गया कि उसके लिए खड़ा होना तक दूभर हो गया, और तब भी वह दशहरा के उत्सवों (२२ अक्टूबर, १७९५) के सम्बन्धमें होनेवाले अत्यधिक परिश्रमको न बचा सका। उस दिन उसका बुखार बहुत तेज हो गया और दो दिन बाद वह बेहोश होकर अपने महलके छज्जे से नीचे गिर गया जिसमें उसकी जांघ की हड्डी टूट गई। इसके बाद वह दो दिन और जीवित रहा पर उसे होश नहीं आया और वह उसी हालतमें स्वर्ग सिधार गया। इस दुःखद घटना ने राष्ट्रकी आशाओंको अन्तिम रूपसे चूर-चूर कर दिया। नाना फड़नीस और दूसरे मंत्रियोंके बीच बड़े तर्क-वितर्क और लड़ाई-झगड़ेके बाद, घृणित राघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय जुनार के बंदीगृहसे निकाल कर लाया गया और उसे पेशवा के पद पर बिठाया गया। इस घटनाने मराठों के भाग्यका सितारा सदा के लिए डुबा दिया। चरित्र और योग्यता दोनोंमें बाजीराव निरा निकम्मा था, और उसका साथी दौलतराव सिन्धिया भी, जो महादाजी का उत्तराधिकारी था, उसीकी तरह अयोग्य बालक था। फ्रांसीसी पदाधिकारियोंके नेतृत्वमें प्रशिक्षित सिन्धिया की शक्तिशाली सेना उसके किसी काम की न थी, क्योंकि उसमें इतना कौशल ही न था कि वह उसको उचित नियंत्रणमें रख पाता। पेशवा और नवयुवक होलकर यशवन्तराव के बीच, जो एक उत्साही एवं वीर परन्तु क्रोधी सैनिक था, घोर शत्रुता पैदा हो गई। जिस क्रूरता के साथ पेशवा ने उसके भाई विठोजी (Vithoji) को मरवाया था, उसका बदला लेने के लिए वह एक विशाल एवं अनुरक्त सेना सहित पूना आ पहुँचा और अपनी शिकायतोंके लिए, जिन्हें पेशवा ने घमंड के साथ हंसकर उड़ा दिया था, न्यायकी मांग की। नगरकी सीमा पर होनेवाले घमासान युद्ध में पेशवा की सेना के पैर उखड़ गये और वह स्वयं अपनी जान बचानेके लिए पहले रायगढ़ और महाद (Mahad) और वहां से सामुद्रिक मार्ग द्वारा बेसीन भाग गया। बेसीन पहुंचकर उसने रेजीडेन्ट कर्नल क्लोज (Col. Close) के साथ प्रसिद्ध सन्धिकी बातचीत की जिसके अनुसार उसने पेशवा पद की पुनःप्राप्तिमें सहायता देने वाली अंग्रेज सेना का खर्च उठानेका वायदा किया। इस प्रकार ३१ दिसम्बर, १८०२ को मराठा राज्यकी स्वतंत्रता का नाश हो गया। अगले वर्ष आर्थर वेलेजली ने किस प्रकार पेशवा को उसकी राजधानी में फिरसे स्थापित किया, सिन्धिया और नागपुरके राजाओं की संयुक्त सेनाओंको पूर्णतया परास्त किया और लॉर्ड लेक ने उत्तरमें किस

प्रकार दिल्ली और सम्राट्को सिन्धिया के हाथ से छुड़ा कर देदीप्यमान विजय प्राप्त की, ये सारी बातें ऐसी हैं जिन्हें सभी जानते हैं। यहां पर उनका विस्तृत वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। शीघ्र ही भारतके ऊपर अंग्रेजों की प्रभुता स्थापित हो गई और मराठोंको प्रभुता सदा के लिए नष्ट हो गई।

२. बाजीराव द्वितीय के ऊपर मारक्वेस ऑफ हेस्टिंग्ज.

अपने अन्तिम संघर्षमें विपक्षीके रूपमें कार्य करनेवाले बाजीराव एवं मारक्वेस ऑफ हेस्टिंग्ज के बीच, जो क्रमसे मराठा और ब्रिटिश राज्योंके प्रतिनिधि थे, जमीन आसमानका अन्तर था। मराठोंका पूर्णतया नाश करनेके लिए मारक्वेस ऑफ हेस्टिंग्ज ने जो भी क़दम उठायें उनमें उसकी उत्कृष्ट योग्यता प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई पड़ती है। यहां पर उसके «व्यक्तिगत रोजनामचे» की कुछ पंक्तियां उद्धृत किये बिना मुझसे नहीं रहा जाता, क्योंकि वह रोजनामचा ऐतिहासिक रुचिकी बातोंसे भरा हुआ है। २३ मार्च, १८१७को और आगे आनेवाले महीनोंमें मारक्वेस ऑफ हेस्टिंग्ज लिखता है: "पिछले वर्ष का अन्त होते-होते हम लोगोंने पेशवा के अनेक षड्यंत्रोंके चिह्न ढूंढ निकाले, जो हमी लोगोंके विरुद्ध रचे हुए जान पड़ते थे। ऐसा लगता है कि गत वर्ष शरद ऋतु तक वह सिन्धिया, होल्कर, अमीरखां, गायकवाड़, नागपुर के राजा और निजामसे इस बातकी सविनय प्रार्थना करता रहा कि वे उसके साथ मिल जांय और अंग्रेजों को हिन्दुस्तानसे बाहर निकाल दें। अब मैं सिन्धिया और होल्कर को ऐसे बन्धनोंसे जकड़ दूंगा कि जिस विश्वासघातकी बात वे इस समय सोच रहे हैं, वह पूर्णरूपसे व्यर्थ हो जायगी। वस्तुतः मराठों का पतन किया जा चुका है।"

पंद्रह वर्षों तक पेशवा का बहुमूल्य अस्तित्व बना रहा और अन्तमें उसे अंग्रेजोंके साथ होनेवाले अपने अंतिम संघर्षमें उनकी फ़ौजोंके सामने आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। १८०२ में बेसीनकी सन्धि होनेके समयसे लेकर १८१८ में पेशवा की अन्तिम पराजयके बीच के पंद्रह वर्षोंमें पूरे भारतमें एक प्रकार की असाधारण अशान्ति एवं अनिश्चय था। इस वातावरणका विशेष कारण एक तो यह था कि विभिन्न सर्दारों और शासकोंके कार्यक्षेत्र निश्चित न थे, दूसरे वे यह न सोच पाते थे कि अंग्रेजी शक्तिके विरुद्ध विद्रोह करें या उसकी अधीनता स्वीकार कर लें। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस काल के ऊपर अनुसन्धान

में संकेत भर कर दिया है और वह भी उस ढंगसे जो उनके द्वारा अपनाये हुए तर्क-क्रमके उपयुक्त हो। कुछने अपनी पूर्वनिर्णीत कल्पनाओंको सुरक्षित रखनेके लिए विषयकी जो कुछ चर्चा की वह अनजानेमें ही की। कुछ भी हो, जहां कहीं मेरे और उनके विचारोंमें अन्तर मिलता है वहां उनके विषय-वर्णनके सम्बन्धमें मुझे इसी तरहकी बातें दिखाई देती हैं।

मैं किसी तरहकी शंका किये बिना दो चपल नवयुवकों, पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा दौलतराव सिन्धिया को, मुख्य रूपसे मराठा-पतनके लिए दोषी ठहरा सकता हूं, क्योंकि दैवयोगसे मराठा राज्यकी सर्वश्रेष्ठ शक्ति इन्हीं दोनोंके हाथमें आ गई थी। उनके कुकर्मों ने पूना-दर्बार और समाजका नैतिक स्तर इतना नीचे गिरा दिया था कि किसीकी जान-माल या इज्जत सुरक्षित न थी। कुशासन, अत्याचार, लूटमार और विनाशके कारण दूर-दूर तक के लोगोंको भीषण दुःख सहन करने पड़े। सर्दारों और जागीरदारों, जिनमें दक्षिणी मराठा देशके सर्दार और जागीरदार विशेषरूपसे शामिल थे, के साथ इतना दुर्व्यवहार किया गया कि उनका मन बिल्कुल हट गया और वे अपनी रक्षा के लिए अंग्रेजोंकी शरण में जा पहुंचे। यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि बाजीराव और दौलतराव जैसे दो व्यक्ति पीढ़ियोंसे बने हुए ठोस भवन को बिना किसी रुकावट के नष्ट कर सकते थे तो निश्चय ही यह बात पहलेसे मान लेनी पड़ेगी कि राज्यमें उचित संगठन अथवा स्वीकृत संविधान का अभाव था। यह निश्चय सत्य है। यदि हमारा शासन संगठित होता तो ये दो अयोग्य नवयुवक कुछ अधिक बिगाड़ नहीं सकते थे। फिर भी यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि समस्त मानवीय मामलोंमें एक अकेला आदमी प्रायः किसी अच्छे या महान् कार्यको बना या बिगाड़ सकता है। जैसे एक शिवाजी ने मराठा राज्यका निर्माण किया, और उसी तरह एक बाजीराव ने उसका नाश कर दिया। व्यक्तिगत रूपमें मनुष्य ही इतिहासको बनाते और बिगाड़ते हैं। जैसा कि मुनरोने दृढ़तापूर्वक कहा है कि खतरेके समय राज्यके अधिष्ठाता के रूपमें एक योग्य संगठनकर्ताका अभाव विनाशका प्रथम और मुख्य कारण है। जब बाजीराव और दौलतराव अपने कुकृत्योंमें फंसे हुए थे, उस समय ऐसे विचारवान् व्यक्तियोंका अभाव न था जिनमें आगे बढ़ने और मामलोंका सुधार करनेकी जबर्दस्त प्रेरणा थी, परन्तु ऐसी दुर्बल और बिखरी हुई सुधारवादी शक्तियोंके लिए दोनों नवयुवक आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली थे। यदि विपक्षी दलमें अंग्रेजों जैसे योग्य प्रतिद्वन्द्वी न होते, जो मराठा पक्षकी छोटीसे छोटी कमीसे अधिकसे अधिक लाभ उठाने

के लिए तैयार रहते थे, तो शायद इस तरहकी शक्तिया ज़ोर पकड़ जाती और दृढता-पूर्वक आगे बढ जातीं। यशवन्तराव ने इस बातकी पूरी कोशिश की कि बाजीरावको हटा दिया जाय और उसकी जगह पर उसके भाई अमृतराव को पेशवा बना दिया जाय, और आर्थर वेलेज़ली ने इस बातकी ओर लक्ष्य भी किया है कि यदि अमृतराव पेशवा होता तो अंग्रेज़ोंको अपनी प्रभुता स्थापित करने का अवसर न मिलता। पर कुशल कूटनीतिपूर्ण और छल-कपटसे युक्त उपायों द्वारा उन्होंने जानबूझ कर यह काम पूरा न होने दिया। वास्तवमें बाजीराव अपने अंग्रेज़ सहायकों को हमेशा यह कह-कर ताना दिया करता था कि "आप लोग मित्र और सहायक होकर आये तो इसलिए थे कि मुझे अपनी शक्ति बनाये रखनेमें सहायता करें, पर आपने भरसक चेष्टा की, मुझे शक्तिहीन बनाने की।" इस तर्कसे बचनेका कोई उपाय नहीं। आगे चलकर मैं परस्पर विरोधी दोनो शक्तियोंके कार्यकर्ताओंके बीच होनेवाले महान् अन्तर और अंग्रेज़ोंकी विशिष्ट राजनीति और संगठनकी चर्चा करूंगा जिनकी सहायतासे मराठा पतनकी व्याख्या सरलतापूर्वक की जा सकती है।

५. विज्ञान की उपेक्षा.

ऊपर बताये गये विशेष कारणोंके अतिरिक्त कई एक सामान्य कारणोंकी ओर भी संकेत किया जा सकता है। इनमें विज्ञानके अध्ययन और सैनिक प्रशिक्षण एवं संगठनकी पूर्ण उपेक्षा की चर्चा की जा सकती है। जिनके हाथमें राज्यका संचालन था, वे इस बातकी ओर ध्यान ही न दे पाये कि उनके योरोपियन पड़ोसी—पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज़—भारतमें कर क्या रहे थे और उनके प्रभावका प्रतिपादन कैसे किया जा रहा था। बाजीराव प्रथम और उसके भाई चिमनाजी ने घोर युद्धके पश्चात् पुर्तगालियोंसे बेसीन जीता था, और उसके बाद हमेशा मराठे लोग बड़े गर्वके साथ उस विजयकी बात किया करते थे। परन्तु पुर्तगालियोंके साथ होनेवाले अपने जलयुद्ध से प्राप्त अनुभव द्वारा उन्हें एक तर्कपूर्ण क़दम उठानेकी बात न सूझी—अर्थात् आत्मरक्षा के लिए सामुद्रिक शस्त्रगृह और जहाज़ बनानेके कारखानों की स्थापना। पुर्तगालियोंके पास डॉक थे, बन्दूकें बनानेके लिए कारखाने थे, और उन्हें वैज्ञानिक तरीकोंसे चलानेके लिए दक्ष पदाधिकारी थे। नोरोहा (Noroha) जैसे पुर्तगाली तोपचियों (Gunners) को मराठोंके यहां नौकर रखनेके बजाय भारतीयोंको बेसीनमें उनका प्रबन्ध अपने हाथमें बनाये रखना चाहिए था। यदि बेसीनमें पुर्तगालियों

का चलन मलिक अम्बरके साथ हुआ जिसके नीचे रहकर शिवाजीने इसे सीखा और बाद को शाहजहांके विरुद्ध लाभदायक ढंगसे उसका अभ्यास किया। शाहजीके पुत्र शिवाजीने उसका विकास करके उसे युद्धका एक उत्कृष्ट अस्त्र बना दिया, जो औरंगजेब के साथ होनेवाले मराठा युद्धके जमानेमें विशेष रूपसे सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। इस तरहके युद्धमें पहले सन्ताजी घोरपडे, धनजी जाधव, खाडेराव दभडे, पेशवा बाजीराव प्रथम, पहलेके दिनोंमें, और सिन्धिया, होल्कर तथा अन्य लोग बादके दिनोंमें निपुण नेता थे। परन्तु जब फ्रांसीसियों और अंग्रेजोंके बीच होनेवाले कर्नाटकके युद्धों में दूर तक गोले फेंकनेवाली तोपों और उनके साथ-साथ रहनेवाली पैदल सेनाके कारनामे दिखाई पड़े तब मराठोंकी युद्धविद्यामें द्रुतगामी परिवर्तन हुए। इसमें सन्देह नहीं कि पेशवाने पानसे (Panse) नामक एक ब्राह्मण सर्दार की देख-रेख में पूना तथा अन्य स्थानोंमें तोपखानेका विभाग स्थापित किया, पर उचित वैज्ञानिक ज्ञानकी अनुपस्थितिमें यह प्रयास अधूरा था। इसके अतिरिक्त वे कभी पर्याप्त मराठा पैदल सेना एकत्रित न कर सके और न ही संकटके समय काम देने योग्य बनानेके लिए उसके आवश्यक प्रशिक्षण तथा संगठनकी व्यवस्था कर सके।

खुल्लम-खुल्ला गुरीला युद्ध-प्रणाली का त्याग पहले-पहल पानीपतमें हुआ जहां प्रसिद्ध भाऊ को इब्राहिमखां गर्दीके तोपखानेके ऊपर सबसे अधिक विश्वास था। पानीपतमें उनकी पराजय युद्ध प्रणालीके परिवर्तनसे नहीं हुई वरन् उसके और बहुत से कारण थे जिनके विषयमें यहां बतानेकी आवश्यकता नहीं। पर सामान्य रूपसे पानीपतके बाद प्राचीन युद्ध-प्रणाली का प्रयोग धीरे-धीरे बंद हो गया। तेलगांवकी लड़ाई के जमानेमें अंग्रेजी तोपों और उनके संगठित पैदल सैन्यदलोंने जो विप्लव मचा दिया था उसकी ओर महादाजीने स्पष्ट रूपसे और सावधानीके साथ ध्यान दिया था। अंग्रेजी सैन्य दलोंको ठोस दीवारोंकी नाईं अडिग खड़े रहते हुए देख कर वह आश्चर्य-चकित रह गया था। अगले साल गुजरातमें भी उसे यही अनुभव हुआ। अंग्रेजी तोपें चाहे कितनी ही कम क्यों न होतीं, फिर भी कोई मराठा नेता उनका सामना करनेका साहस न करता। इसीलिए महादाजीने अंग्रेजोंके साथ चलनेवाले युद्धसे छुटकारा पाते ही योरोपीय नमूने पर अपनी सेनाका संगठन करनेका निश्चय किया। उसने फ्रांसीसी अफ़सर नौकर रखे, जिनके ऊपर दुर्भाग्यसे विपत्तिके समय निर्भर नहीं रहा जा सकता था, और जो महादाजीके निर्बल उत्तराधिकारी, दौलत रावके क़ाबूसे बाहर साबित हुए। आगरे और दूसरी जगहोंमें फ्रांसीसियोंके निर्देशनमें बारूदखाने उत्तम

हथियार बनाये जाते थे, पर बाजीराव द्वितीय और दौलतराव सिन्धियाने अपनी युद्ध-शक्ति की इस शाखाका प्रतिपादन करनेकी परवाह न की। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं, "जब १७६८ में रेमन्ड (Raymond) की सेना हटाई गई उस समय उसके हैदराबादके गोदाममें अश्वारोही सेनाके लिए कुछ पिस्तौलोंके अतिरिक्त श्री पीरन (Mr. Piron) की अध्यक्षतामें काम करनेवाली सेना से १२,००० अधिक आदमियोंके लिए छोटे हथियार और कपड़े थे। फ्रांसीसी पलटनमें तीन शस्त्रा-गार और दो ढलाई करनेके कारखाने थे। हैदराबादमें उनकी लाइनोंके पासवाले शस्त्रगृहमें सैनिक सामग्री भरी थी और ढलाईके कारखानेमें पीतलकी बहुत सी तोपें थीं जो नई-नई ढाली गई थीं। इन तोपोंको अंग्रेजी तोपखानेके अफसर उतनी ही बढ़िया और अच्छी बनी हुई समझते थे जितनी कि इसके पहले तक उन्होंने देखी थी। वे तलवारें, फ़ौजी बन्दूकें और पिस्तौलें भी बनाते थे। फ्रांसीसियोंको हमेशा अच्छी तनख्वाह मिलती थी; और देशी सेनामें काम करनेवालों* की अपेक्षा उनके कपड़े साफ़ सुथरे और उनका अनुशासन अधिक उत्कृष्ट था"। यह स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ता है कि यदि केन्द्रीय मराठा सरकार में अपने युद्धका संगठन और मशीनोंका संचालन करनेके लिए आवश्यक पूर्वदर्शिता एवं धैर्य होता, तो वे अंग्रेजोंके बढ़ावका सफलतापूर्वक अवरोध करने में समर्थ हो गये होते। पर इसके लिए एक सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली का होना नितान्त आवश्यक है, जिसके विषयमें मैं अब बताऊंगा।

७. संगठन का अभाव.

हमारे पतन का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण रहा है, हमारे हर एक कार्यमें संगठन अथवा प्रणालीका पूर्ण अभाव, फिर वह कार्य चाहे सरकारी पदसे सम्बन्धित हो या विभागसे या शत्रुके विरुद्ध होनेवाले युद्धसे। साधारणतः सेनाका संचालन एक व्यक्तिके हाथमें नहीं होता था। कार्य और शक्ति का विभाजन न था और कर्त्तव्यों का स्पष्ट रूपसे निरूपण न किया जाता था। काम करनेकी कोई विधि न थी, कोई प्रणाली न थी, कोई नियम न था। मराठोंके साथ विशेष रूपसे यह बात थी, क्योंकि वे स्वभावसे ही अनुशासनमें रहना पसंद नहीं करते और न ही सहयोगके साथ कोई काम करना चाहते हैं। हर एक को अपनी अलग-अलग ढपली और अलग-अलग

* इस्लामी संस्कृति—जनवरी, १६३३

रूपसे इस बातका भी स्मरण रखना चाहिए कि मराठे उस समय भारत की किसी भी अन्य शक्ति या रियासतसे किसी तरह कम न थे, बल्कि बहुत बढ़कर थे। मौकेकी बात सिर्फ़ इतनी ही कही जा सकती है कि इसके पहले कि मराठोंको जागीरदारोंकी छितरी हुई स्थितिका सुधार करने और एक चतुर प्रशासकके नेतृत्वमें उनका दृढ़ीकरण करनेका समय मिल सके, उन्हें अंग्रेजों जैसी एक भयंकर शक्तिका मुकाबला करना पड़ा, जो उनसे विज्ञान, संविधान, एकता और नाविक प्रभुता, सभीमें मजबूत थी। १७९४ और १८०० के बीच मराठा राज्यके अधिकांश अनुभवी और योग्य व्यक्ति मृत्युके शिकार हुए। वृद्ध रामशास्त्री पहले ही ११ नवम्बर १७८९ को स्वर्ग सिधार चुका था। महादजी सिन्धिया की मृत्यु १२ फ़रवरी १७९४ को हुई। हरीपन्त फड़के की उसके चार महीने बाद (१९ जून १७९४) और अहिल्या बाई की उसके एक वर्ष बाद (१३ अगस्त, १७९५ को) हुई। नवयुवक पेशवा माधवराव, जो जन्मसे ही पूरे राष्ट्र के आनन्द एवं आशा का केन्द्र था, २७ अक्टूबर १७९५ को अकस्मात् अपने राजप्रासाद के छज्जेसे गिरकर मर गया। इसके बाद १५ अगस्त १७९७ को तुकोजी होल्कर और १८ सितम्बर १७९९ को परशुराम भाऊ पटवर्धन और सबसे बादमें १३ मार्च १८०० को नाना फड़नीस की, मृत्युने, शिवाजी द्वारा संस्थापित मराठा स्वराज्य के अन्तिम अध्यायको बदकर दिया।

ठीक ऐसे समयमें जबकि मृत्युने यह विप्लव मचा रखा था, राज्यकी सर्वोच्च शक्ति एक अयोग्य और विवेकशून्य तथा अत्यधिक स्वार्थी पेशवा, बाजीराव द्वितीयके हाथों में आ पड़ी, जिसमें उस कार्यको करनेकी तनिक भी क्षमता न थी जो कि उसके सिर आ पड़ा था। उसने उन लोगोंके ऊपर विश्वास नहीं किया जो प्राचीन शासन-पद्धति के अन्तर्गत पले थे। उनके स्थान पर उसने नीची जातिके निकम्मे लोगोंमें से, स्वार्थी पुरोहितों या सरजीराव घटगे (Sarjerao Ghatge) जैसे षड्यंत्रकारी नये-नये दौलतमन्द लोगोंमें से अपने सलाहकार चुने जिनके काले कारनामोंके बारे में जितना कम कहा जाय उतना ही अच्छा है। ओछे दिमाग वाले और चरित्रहीन व्यक्तियोंसे घिरा हुआ बाजीराव जैसा दुराचारी भला अंग्रेजोंकी तरफ़से झुकके मुंह पदाधिकारियोंसे, जो अपने समयके प्रभावशाली व्यक्ति थे, कैसे मुकाबला कर सकता था? गवर्नर-जेनरल लॉर्ड वेलेज़ली और उसके दो भाई आर्थर और हेनरी वेलेज़ली, असाधारण योग्यता तथा बुद्धिवाले व्यक्ति थे। आर्थर वेलेज़ली (बादको ड्यूक ऑफ़ वेलिंगटन) को तो आगे चलकर नेपोलियन का विजेता होनेका सौभाग्य

मिलता था। यदि हम दूसरे नम्बर पर आनेवाले जॅकिस, लेक और तमाम और लोगोंका ज़िक्र न करें, तब भी माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन, सर जॉन मालकॉम, सर बॅरी क्लोज़ (Sir Barry Close), कर्नल कोलिन्स, जोनाथन डन्कन और थोड़े दिन बाद सर टॉमस मुनरो आदि सभीने अपने पीछे जो यश छोड़ा वह अतुलनीय है। जिस जातिमें एजेन्टोंकी तरहसे काम करनेके लिए ऐसे-ऐसे योग्य व्यक्ति हों उसके लिए किसी समयमें भी सफलता प्राप्त करना निश्चित है। दो शताब्दियोंके मिलान के समय भारतकी राजनीतिमें इतना महान् अन्तर क्यों दिखाई देता है, इसकी व्याख्या करना कठिन है। उसके लिए तो सिर्फ़ एक कारण बताया जा सकता है। वह है—भाग्य, जिसको «भगवद् गीता» के महान् दर्शनमें दृढ़ताके साथ प्रत्येक मानवीय व्यापार* का पांचवां कारण स्वीकार किया गया है। मराठोंने अपनी जीवन-वृत्ति में अनेक कठोर संकटोंको पार किया था। शिवाजी महान्के बाद उसका अयोग्य पुत्र गद्दी पर बैठा जिसने क़रीब-क़रीब पूरा राज्य खो दिया; औरंगज़ेब की मृत्युसे एक दूसरा संकट पैदा हो गया—वह था घरेलू युद्ध। ताराबाई की मूर्खतापूर्ण महत्वाकांक्षा ने शाहूकी मृत्युसे उत्पन्न होनेवाली मुसीबतोंको अकारण ही बढ़ा दिया। यहां तक कि पानीपतकी लड़ाई भी भाग्यक्रमके इस तत्वसे रहित न थी। पेशवा माधवराव प्रथमकी असामयिक मृत्युने वह अन्तिम महासंकट उत्पन्न कर दिया जिसने मराठों के पूरे राजनीतिक भवनको क़रीब-क़रीब तोड़ दिया। इंगलैंड का दीर्घकालीन इतिहास भी भाग्यचक्रके इस तत्वसे परे नहीं है, जिसने उसके अस्तित्वके विभिन्न युगोंमें संकट उत्पन्न किये हैं।

६. धर्म की मिथ्या धारणा.

पर हमारे लिए जांच करनेका एक रोचक विषय यह भी है कि उस वैज्ञानिक प्रगतिके साथ-साथ, जो हर जगह और हर समय एक राष्ट्र के अस्तित्वके लिए इतनी आवश्यक है, क़दम बढ़ानेमें हम असफल क्यों हुए। हम हिन्दुओंने अतीतमें महान् सफलताएँ प्राप्त कर ली हैं। एक निश्चित समय तक भारतमें कला और विज्ञानका अस्तित्व बना रहा और उनकी उन्नति हुई, जैसे हिन्दू और मुस्लिम कालोंकी भवन-निर्माण कला, हमारे बढ़िया से बढ़िया कपड़े, हमारी कलाएँ और साहित्य, गणित विद्या तथा

* अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥

विज्ञानोंके मौलिक अध्ययनसे दूर रखा। मेरी रायमें तो हमारे अन्धकार युगोंका उदय लगभग उसी समय हुआ जब योरोपमें उनका अन्त हुआ।

जिस समय भारतमें धार्मिक पुनरुत्थान के लिए आन्दोलन हुआ, उसी समय योरोपमें भी उस तरहका एक आन्दोलन हुआ, जिसका वर्णन रानाडे ने किया है, पर यहां वह प्राचीन से नयेमें परिवर्तन समझा गया, जैसा कि हमें लूथर और बेकन जैसे पुरुषोंके जीवनसे पता चलता है। योरोपमें धर्मसुधार विद्या के पुनर्जन्मके बाद हुआ और उसने विज्ञान तथा उन्नतिकी ओर ध्यान देनेसे रोका नहीं। शिवाजी से सौ वर्ष पहले, सर टॉमस मोरने इंगलैंडमें प्रगति और शिक्षा की नई दिशाएँ निर्धारित की। मोरसे कुछ वर्षों पूर्व, कालम्बस तथा अन्य लोगोंने, गणितशास्त्र और भूगोलकी सहायता से, तमाम नई-नई खोजें की थी और संसार भरमें सामुद्रिक यात्राएँ आरम्भ की थीं। ज्ञानकी वृद्धि करने और लोगोंके मस्तिष्कोंसे अन्धविश्वास हटानेके लिए मुद्रणकला का उदय हो गया था। उस समय योरोपमें, साधारण शिक्षा, भारतमें प्रचलित शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट एवं अधिक व्यावहारिक ढंगकी थी। पूना के «भारत इतिहास मंडल» द्वारा मुद्रित पुस्तकोंमें से एकमें शिवाजी के समयके शास्त्रियों और पंडितोंकी एक सूची प्रकाशित हुई है, पर उसके अन्दर ऐसा नाम कोई भी नहीं आता जो ज्ञानकी गहराई और व्यावहारिक उपयोगिता में, बेकन या उस समयके किसी दूसरे योरोपीय विद्वान् की बराबरी कर सके। निस्सन्देह सूचीमें बहुतसे प्रमुख नाम हैं, पर वे सभी पुरान शास्त्रोंय ढंग के हैं जो धार्मिक व्याकरण और «पाठ-पाठ» तरहके तर्कसे आगे शायद ही कभी बढ़े हों। योरोपमें शिक्षा ने विचार और जीवनमें उदारता पैदा की, लोगोंको साहसी, क्रियाशील और वीर बनाया, जबकि भारतमें ऊपर बताये हुए दोनों आदर्शोंके अन्तर्गत, लोग अज्ञान और अन्धविश्वासमें डूबे रहे, भाग्यवादी और भाग्यवादी बने रहे और इह-लोकमें सुधार करनेकी परवाह किये बिना परलोकमें मोक्ष प्राप्त करने की चेष्टा करते रहे।

१०. अंग्रेजोंकी विशिष्ट नीति.

अंग्रेजोंके जिज्ञासु स्वभाव और विशिष्ट कूटनीति ने मराठोंके मुकाबलेमें उनकी (अंग्रेजोंकी) अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा दी थी। प्रथम मराठा-युद्धके जमानेमें अंग्रेजोंको मराठा राज्य, उसकी सेनाओं, विभिन्न जागीरदारोंकी तुलनात्मक योग्यता, उनके पारस्परिक सम्बन्ध और उनके पारिवारिक झगड़ोंके सम्बन्धमें एक-एक बात

पूरी तरहसे मालूम थी। अंग्रेज लोग अच्छी तरहसे जानते थे कि कौन लोग बाहरी प्रभावों में आ सकते हैं और कौन लोग पेशवाओंके प्रति दृढ़-भक्ति रखते हैं। जब उन्होंने युद्ध आरम्भ किया, वे किसी भी सम्भावित घटना के लिए तैयार थे। हार्नबी, हेस्टिंग्ज, मॉस्टिन, ऐंडरसन, अप्टन, मैलेट, गोडार्ड और कुछ दूसरे लोगोंको छोड़कर जो प्रत्यक्षरूपसे लड़ाईमें मदद कर रहे थे, तमाम और विश्वसनीय अंग्रेज एजेन्ट थे, जो व्यापारिक अभिप्रायोंके लिए देशमें भ्रमण करते रहते थे, और साथ ही साथ हर तरह की सूचनाएँ प्राप्त किया करते थे, जैसे उदाहरणके लिए मराठोंके क़िले, उनकी स्थिति, उनके अन्दर जानेके रास्ते, लोगोंकी दशा, स्थानीय झगड़े और राजनीतिक घटनाओं आदिके विषय में। इससे पता चलता है कि अंग्रेज लोग कितने जिज्ञासु होते हैं और किस सावधानीके साथ वे सारी लाभदायक सूचनाओंका अध्ययन व संग्रह करते हैं और तुरन्त उसको उचित अधिकारियों के पास पहुंचा देते हैं। नारायनरावकी मृत्युके समय मॉस्टिन पूना में मौजूद था, और सात वर्षों तक वह बम्बई, कलकत्ता और मद्रास सन्देशे भेज-भेजकर लाभदायक सूचना पहुंचाता रहा। सच तो यह है कि उस आक्रमणकारी युद्धको छिड़वानेमें उसीका मुख्य हाथ था। दूसरी तरफ़, मराठा दलको अंग्रेज लोगोंके कारनामों की प्रायः कोई सूचना न थी। उन्हें इंगलैंडके विषयमें, अंग्रेजी ढंगकी शासनपद्धतिके विषयमें, भारत और उससे बाहर उनकी बस्तियों के बारेमें, उनके चरित्र और प्रवृत्तियों, उनके अस्त्र-शस्त्र और युद्धसामग्रीके विषयमें कोई ज्ञान न था। शायद नाना फड़नीस तक इन सब बातोंको न जानता था। इस तरह जब अंग्रेजोंको इन सारी बातोंकी पूरी जानकारी थी, तो मराठे उनसे बिल्कुल अनभिज्ञ थे।

मराठोंके शासनकालमें ऐसे किसी हिन्दूका उदाहरण नहीं मिलता जिसने अंग्रेजी सीखी हो और खुलकर उस भाषामें बातचीत और पत्र-व्यवहार कर सकता हो तथा अंग्रेजोंकी योजनाओं, उनके इरादों और गतियोंकी ठीक-ठीक सूचना प्राप्त कर सकता हो। पर अंग्रेजोंकी तरफ़ बहुतसे लोग ऐसे थे जिन्होंने भारतीय भाषाएँ सीख ली थीं और उनमें अच्छी तरहसे बातचीत कर लेते थे। वेलेज़लीके समयमें एक अंग्रेज अफ़सर ने कलकत्ते में पहले से तैयार किये बिना मराठी में एक भाषण दिया। इस घटनासे मराठोंकी अन्तर्वर्ती हीनता का पता चलता है और शासकोंके रूपमें उनकी असफलता का कारण ज्ञात हो जाता है। नाना फड़नीस भी न केवल बाहरी दुनिया, वरन भारत वर्ष तकके भूगोलसे अनभिज्ञ था। जिन मानचित्रोंका प्रयोग वह उन दिनों करता था

जिसे मैं व्यक्तिगत रूपसे जानता हूं और जिसके ऊपर विश्वास कर सकता हूं। जब तक इस बातके उदाहरण न मिलें कि दूसरी जातिके योग्य उम्मीदवारों को छोड़कर अयोग्य ब्राह्मणोंको नौकरियां दी गईं, तब तक सिर्फ इसलिए उनकी निन्दा करना कि उन्होंने एक जातिके लोगों को नौकर रखा, उचित नहीं जान पड़ता। शायद अन्तिम पेशवा, जिसका एक मात्र चिन्त्य विषय था—ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना और अपने राज्यकी सेवा करनेके सर्वोत्कृष्ट साधनके रूपमें धार्मिक गुणकी प्राप्ति करना—के शासनकाल के अतिरिक्त, मुझे ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिला जबकि पेशवाओं ने अपनी जातिके लोगोंकी पद-वृद्धि करनेके लिए दूसरी जातिके लोगोंको जान-बूझ कर दबा दिया हो। शिवाजीने मोरे, मोहिते और घोरपदे आदि कुछ बड़े मराठा परिवारोंको सख्तीके साथ दबा दिया था और प्रभुओं तथा ब्राह्मणोंको शक्तिशाली और प्रभावशाली बनाया था। वह रामदास तथा अन्य योग्य ब्राह्मणोंके प्रति उच्चतम श्रद्धा रखता था। क्या हमें इसमें किसी तरह का जाति-पक्षपात देख पड़ता है? यह ध्यान देने योग्य बात है कि नारायणरावकी हत्या के लिए दोषी ठहराये जानेवाले ४१ व्यक्तियों में से, २४ हत पेशवाकी जातिके दक्षिणी ब्राह्मण, २ सारस्वत, ३ प्रभु, ६ मराठे, १ मराठा नौकरानी, ५ मुसलमान, और ८ उत्तरी हिन्दू थे। इस विश्लेषण से यह बात मालूम हो जायगी कि जहां तक प्रशासनका सम्बन्ध था, जातिका कोई महत्वपूर्ण स्थान न था।

यह सभी जानते हैं कि इब्राहिमखां गर्दी ने पानीपतके मैदानमें कितनी सच्चाई के साथ अपने सहधर्मी अहमदशाह अब्दालीके विरुद्ध भाऊ साहेबकी सेवा की थी। एक गर्दी नेता, मुहम्मद यूसुफ, जिसने नारायणरावकी हत्या की थी, पेशवाओंकी तरफ़से एक सावन्त रुहेला के द्वारा पकड़ा गया था। आगरेमें एक मुसलमान «फ़र्राश» ने किस प्रकार शिवाजी की जान बचाई थी, यह मैं पहले बता चुका हूं। यदि शिवाजी के समयके कुछ मराठा परिवारों ने आगे चलकर अपनी महत्ता खो दी तो वह इसलिए नहीं कि पेशवाओंने जानबूझकर उन्हें दबा दिया। शिवाजी के समयमें तमाम ब्राह्मण परिवारों को भी समान रूपसे कष्ट उठाने पड़े—पिंगले, हनुमन्ते, अमात्य, सचिव, प्रतिनिधि और इसी तरहके तमाम परिवारोंके उत्तराधिकारियों में व्यक्तिगत योग्यता का अभाव होते ही, ये सारेके सारे परिवार एक तरहसे पिछड़ गये।

वास्तवमें, मराठा शासनपद्धति विशेषरूपसे सुगठ थी, क्योंकि उसके अन्तर्गत

देशके प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह किसी भी जाति या सामाजिक स्तरका क्यों न हो, अपनी योग्यता प्रदर्शित करनेके लिए बहुत कार्यक्षेत्र प्राप्त था। उन दिनों अपने स्वराज्यसे सब लोगोंको यह व्यावहारिक सुविधा मिलती थी। मैंने अपनी मराठी पुस्तकों में १०० से ऊपर विभिन्न परिवारोंका लेखा दिया है और उनके बारेमें छोटी-छोटी बातोंका जो भी ब्योरा मुझे मिल सका, वह सब मैंने दे दिया है। उस वर्णनको पढ़कर यह बात सरलतापूर्वक सिद्ध हो जाती है कि लोगोंको सेवा करने और विशेष योग्यता प्राप्त करनेके लिए समान रूपसे अवसर मिलते थे। व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष और आपसी कलह तो हमेशा ही थे, और हमेशा रहेंगे; पर वे जातिके सिद्धान्त पर आधारित न थे। इतिहास में सिन्धिया और होल्कर पीढ़ी दर-पीढ़ी एक दूसरेके सदा विरोधी रहे हैं, पर किसी तरह भी उसका कारण जाति नहीं बताई जा सकती। यह कहा जाता है कि माधवराव और नारायणराव के शासनकालमें देशस्थ और कोंकणस्थ लोग भगड़ते रहते थे, पर आलोचनात्मक परीक्षण करने पर यह बात ठीक नहीं उतरती। मैं दोनों जातियोंके स्वार्थोंको विपक्षी दलोंके दोनों ओर मजबूतीके साथ सम्बद्ध दिखा सकता हूं। तीन पीढ़ियों तक पेशवा लोग और प्रभु चिटनिस लोगोंके परिवारोंके बीच बड़ी घनिष्टता रही और पेशवाओं ने बहुत हद तक प्रभु चिटनिस लोगोंकी ही बदौलत इतना ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया था।

शिवाजी और उसके बादके समयमें, राज्यकी सबसे बड़ी शक्ति समस्त जातियों का यह सुखद सहयोग था। जब पेशवा पूर्व में बहुत दूर गया हुआ था और उसकी अनुपस्थितिमें दमजी गायकवाडने पूना और सतारा पर आक्रमण किया था, उस समय एक मराठा और प्रभु-सेनापति ने ही पेशवा की स्थितिकी रक्षा की थी। यदि ताराबाई पेशवा बालाजीराव से घृणा करती थी तो अनेक ब्राह्मण उसके विश्वासपात्र थे और अनेक मराठों के प्रति उसे अरुचि भी थी। यदि सखाराम हरी, जो एक प्रभु था, कोंकणस्थ राघोबा का विश्वासी समर्थक था, तो भवजी महादेव सोहनी और मनजी फड़के भी, जो क्रमशः कोंकणस्थ और मराठा थे, उसके पक्के समर्थक थे।

पहले मराठायुद्धके जमानेमें लगभग सभी मराठों ने और दूसरे सेनापतियोंने क्रमसिन पेशवा के प्रति बड़ी निष्ठा और राजभक्तिके साथ राष्ट्रीय हितका समर्थन किया। कर्नाटक और उत्तरके युद्धक्षेत्रोंमें, पानीपत और तेलगांव में, ग्वालियर और दोहदके दुर्गोंके सामने, लालसोत और खर्दा में, बार-बार सभी जातियोंने पेशवाओंके सामान्य-ध्वजके नीचे रह कर समान साहस और पराक्रमके साथ युद्ध किये और बहुधा

एक ब्राह्मणसेना ध्यक्षने ही उनका नेतृत्व ग्रहण किया। मल्हारराव होल्कर जातिका गड़रिया था, पर उसने बाजीराव प्रथम या उसके पुत्रोंके प्रति, जो ब्राह्मण थे, प्रशिष्टता का व्यवहार कभी नहीं किया। प्रति वर्ष पेशवा बाजीराव प्रथमके मृत्यु दिवस पर पूना में एक भोज होता था, जिसमें सिन्धिया, होल्कर और बाजीराव के अन्य अन्तरंग मित्र आमंत्रित किये जाते थे, और पेशवा के परिवारकी प्रधान स्त्रीको एक ही समय में सबको भोजन परोसना पड़ता था। एक बार ऐसा हुआ कि मल्हारराव अपने कुत्तोंको साथ लेकर भोजन करनेके लिए आया। गोपिका बाईने, जो अतिथियोंको भोजन परोस रही थी, मल्हाररावको खानेके कमरेमें कुत्तोंको लानेके लिए मना किया। इस पर उसने जवाब दिया कि अपने कुत्तोंको अपने साथ भोजन कराये बिना वह न खायगा। इसलिए ज्यादा अच्छा यह होगा कि भीतर ब्राह्मणोंके पास जाकर उन्हें भ्रष्ट करनेके बजाय वह बाहर ही बरामदेमें बैठकर अपने कुत्तोंके साथ भोजन करले। इस तरहसे बाहर रखे जानेके कारण उसने रत्ती भर बुरा नहीं माना। मराठा कालमें लोग जाति पांतका भेदभाव केवल धार्मिक विषयोंमें मानते थे, पर उनके दैनिक जीवनमें उसका कोई प्रभाव नहीं होता था। अन्तर्जातीय भोजमें आपत्ति और छूनेसे भ्रष्ट हो जानेके भयके ऊपर जोर अभी हालमें उस समयसे दिया जाने लगा है जब से एक जाति दूसरोंसे बड़ी बताई जाने लगी है। इस तरहसे बिना अधिकारके छेड़छाड़ शुरू हो गई है। उन दिनों जातिकी विशिष्टता और हीनताका प्रभाव शुद्ध धार्मिक उत्सवोंमें दिखाई पड़ता था, जीवनके साधारण मामलोंमें नहीं। मैं उस प्रश्नको इसी तरहसे देखता हूं।

पर जाति और सामाजिक बन्धनोंके इस सर्वांश परीक्षण दूसरे दृष्टिकोणसे करना आवश्यक है। तमाम लेखकोंने घरेलू झगड़ों और जातिपांतके भेदभावके सम्बन्धमें निरे तर्क जुटा रखे हैं, पर दुनियाके पर्दे पर शायद ही ऐसा कोई पतित राष्ट्र हो, (जिसका इतिहास प्राप्य है) जिसके पतनके कारण वही न हों जो और राष्ट्रोंके हुए हैं, क्योंकि समस्त संसारमें मानव स्वभाव एक जैसा होनेके कारण, मनुष्यकी स्वार्थपरता सदैव दूसरोंके त्याग से लाभ उठानेकी चेष्टा करती है। चाहे कुछ भी हो, भारतवर्ष के मामलेमें हम सिकन्दर महान् द्वारा पोरसके हराये जानेसे लेकर, पेशवाओंके पतन तक या वर्तमान समयके साम्प्रदायिक तनाव तक बराबर इन्हीं कारणोंको बार-बार दुहराते हुए सुनते आये हैं। इन संचित तर्कोंको पेश करना तो सरल है पर उनका खंडन करना कठिन है। मानव क्रिया को सदैव साहसपूर्ण साहसिक कार्य करनेके लिए

किसी कार्यक्षेत्रकी आवश्यकता होती है, और जब तक राष्ट्रकी रुचियोंके संरक्षक उसके सदस्योंको एक उद्देश्य या कार्य करनेके लिए सुअवसर प्रदान करनेमें समर्थ रहते हैं तब तक उनकी चपल क्रियाशीलता बहिर्मुखी बनी रहेगी और उन्हें आन्तरिक क्षेत्रोंका अतिक्रमण करनेके लिए समय न मिलेगा। इसलिए एक राष्ट्रीय नेताकी महत्ताका मापदंड वे भावी साहसिक कार्य होते हैं जिन्हें वह अपने अनुयायियोंके सम्मुख रख सकता है। मेरी रायमें किसी राष्ट्रकी बहुत कुछ सफलता या असफलता उसके नेताओंकी रचनात्मक कल्पना शक्ति एवं दूरदर्शितापूर्ण प्रबन्धके ऊपर निर्भर होती है। सूक्ष्म परीक्षण करने पर यह पता चलेगा कि शिवाजी ने अस्थायी रूपसे मराठा जातिकी पूर्ण कल्पना शक्तिको बदल दिया था। शताब्दियोंसे इंगलैंड की अंग्रेजी वैधानिक प्रणाली सफल होती आ रही है। इसका कारण यह है कि उस प्रणालीके ही अन्तर्गत एकके बाद एक करके ऐसे योग्य नेताओंकी व्यवस्था है, जो राष्ट्रकी सर्वोत्कृष्ट रुचियोंकी सेवा करते हैं।

फ़ॉरेस्ट द्वारा और « फ़ारसी कैलेन्डरों » के खण्डोंमें, छापे हुए तमाम काग़ज़ोंका सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह बात दिखाई देती है कि अंग्रेज लोग किस सावधानी और धूर्तताके साथ न केवल मराठा राज्यके भवनको धीरे-धीरे नष्ट कर रहे थे, बल्कि भारत के अन्य विभिन्न शासकोंको भी नष्ट करनेमें लगे हुए थे। अंग्रेज लोग पेशेवर व्यापारी तो थे ही। फिर उनका धर्म और जाति भी विदेशी थी और इंगलैंड से उन्हें मूल रूप में सदैव जबर्दस्त समर्थन प्राप्त रहता था। ऐसी दशामें वे लोग आसानीसे उन असंख्य झगड़ोंमें पक्षपातरहित मध्यस्थ बन सकते थे, जो केन्द्रीय मुग़ल शक्तिके नष्ट होनेके बाद उठा ही करते थे। यदि वे किसी आपत्तिजनक साहसिक कार्यमें सफल हो जाते, जैसे प्लासीके मामलेमें, तब तो अच्छा ही था; यदि वे असफल होते, तब भी उनकी कोई विशेष हानि न होती; वे अपनी बढ़ोतरीके लिए चुपचाप उससे अच्छे मौक़ेका इन्तज़ार कर सकते थे, जैसा कि प्रथम मराठायुद्धमें सचमुच हुआ भी। उस समय तक अनेक मराठा सरदारोंका सामान्य उद्देश्य था और उनकी महत्त्वाकांक्षा एवं साहसिक कार्यके लिए सामान्य क्षेत्र था, जिनका उदाहरण पानीपत और खर्दा के स्मरणीय युद्धक्षेत्रोंमें मिलता है, क्योंकि दोनोंमें सब जातियां और सब लोग सामाजिक ईर्ष्या-द्वेषके बिना एक साथ हो गये थे। अतएव मैं यह नहीं समझ पाता कि मराठा शक्तिका ह्रास करनेमें जाति किस प्रकार सहायक हुई। विजेताओं का यह तरीका होता है कि वे पराजित राष्ट्रके ऊपर जितने भी दोषोंकी कल्पना की

जा सकती हैं वे सभी लाद देते हैं। पर चूंकि हम हारे हुए लोगोंमें से हैं, अतः हमारे लिए यह जरूरी है कि हमको जो कुछ बताया या सिखाया जाता है, उसे हम उस समय तक अपने गलेके नीचे न उतार लें जब तक प्रमाणके आधार पर हमारा तर्क उसे स्वीकार करनेके लिए तैयार न हो।

१२. प्रमुख मराठा व्यक्ति.

पढ़ते समय जिन विभिन्न प्रकारके मराठों से विद्यार्थियोंकी भेंट होती है उनके चरित्रका निरीक्षण करना उनके लिए जरूरी है। मराठों में बहुतसे शासक, और राजनीतिज्ञ, सैनिक और सेनाध्यक्ष, निर्णायक और वित्तवेत्ता, कवि और लेखक हुए जिनमें कई एक स्त्रियोंने भी नाम पैदा किया। उन्होंने युद्ध किये और लड़ाइयां जीतीं, और बहुधा उन्हें बड़ी कठोर यातनाएँ सहनी पड़ीं जिनका उन्होंने धैर्य और शान्ति के साथ मुकाबला किया। क्रूरता या धोखेबाजीके काम करके उन्होंने अपनी जीवन-वृत्तियोंको कलंकित नहीं किया। सच्चे योद्धाओंकी नाईं वे अपने विपक्षियोंका लिहाज करते थे और उनके साथ आदरपूर्ण बर्ताव करते थे। सतारा में आठ साल तक बन्दीगृहमें रहने पर अर्काटके नवाब चांदा साहब के साथ गौरव-पूर्ण व्यवहार किया गया। उन दोनों अंग्रेजों ने जो महादाजी सिन्धिया के साथ बन्धकके रूपमें रहे, अपने साथ किये गये उस सरदार के व्यवहारकी बड़ी प्रशंसा की। जिस समय निजामका मंत्री मुशीर-उल-मुल्क पूनामें क़ैद था, उस समय उसके साथ भी इसी तरहका सम्मानयुक्त बर्ताव किया गया था। सचमुच उनकी कुछ तकलीफ़ें तो बेजगह दया दिखानेके कारण पैदा हुईं, जैसे रघुनाथराव और मनाजी फड़के के मामले में। अंग्रेज लोग ऐसे मामलोंमें उनका काम तमाम कर डालते, जैसा उन्होंने १७७५ में हरी भिडे (Hari Bhide) के साथ किया। उन्होंने राजद्रोहके एक ऐसे अपराधके बदलेमें, जो साबित भी नहीं हो पाया था, उसको तोपसे उड़ा दिया, जबकि चार महीने बाद हरीपन्त फड़के ने गणेश विट्ठल वाघमेर (Ganesh Vithal Waghmare) को इसी तरह के अपराधके लिए केवल बन्दी बना कर छोड़ दिया था।

मराठा पराक्रम और त्यागके कार्योंको समझनेके लिए कुछ ऐतिहासिक परिवारों की वंशावलियोंके ऊपर एक सरसरी निगाह डाल लेना लाभप्रद होगा। उदाहरणके लिए सिन्धिया लोग अथवा पटवर्धन लोग। सतारा के ऐतिहासिक एवं सम्मानित

चिटनीसोंके कायस्थ परिवारने लगातार सात पुश्तों तक योग्य लेखकों और कूटनीतिज्ञोंको जन्म दिया, जो इतिहासका एक अभूतपूर्व तथ्य है, और अपनी ढेर की ढेर «बखरों» तथा अन्य रचनाओंके लिए अमर ख्याति प्राप्त कर ली। यदि हम शिवाजी और उनके «गुरु» रामदास को अलग कर दें तब भी मराठा इतिहासमें अलग-अलग पेशोंमें हमें इस तरहके देदीप्यमान नाम मिलेंगे जैसे सन्ताजी घोरपदे और धनजी जाधव, रामचन्द्र नीलकंठ अमात्य और परशुराम त्र्यम्बक, रघुजी भोसले और त्र्यम्बकराव दभदे, बाजीराव, चिमनाजी अप्पा, और माधवराव नामके पेशवा लोग, दमजी गायकवाड़ और सदाशिव राव भाऊ, रामचन्द्र बाबा और खंडू बल्लाल, महादाजी सिन्धिया और नाना फड़नीस, सखाराम बापू और रामशास्त्री, जीजा बाई, राधाबाई पेशवा, उमाबाई दभदे, अहल्या बाई, झांसीकी लक्ष्मी बाई आदि और भी बहुतसे नाम, जिन्होंने न भुलाई जाने योग्य सफल कृतियोंसे मराठा इतिहासको प्रकाशित कर दिया और शक्तिशाली राष्ट्रके विभिन्न प्रकारके सभी चिन्त्य विषयोंको चतुराईके साथ सँभाल लिया। उन्होंने विदेशियोंके साथ अधिकतर समभावसे व्यवहार किया और जैसा सभी जानते हैं, इस बातकी व्यावहारिक शिक्षा देकर कि कुदृत्योंमें शक्तिशाली राजाओंका भी सफलतापूर्वक अवरोध किया जा सकता है, उस अन्धकार को दूर किया जो सर्वत्र छाया हुआ था, और भारतवर्षको प्रेरणा एवं आशा प्रदान की। इस प्रकार शिवाजी महान्‌का उदाहरण यदि हमारे सम्मुख एक आदर्श नहीं रख सकता, तो कम से कम हमारे लिए एक सीमा निर्धारित कर सकता है, जिसके पीछे हमें किसी तरह भी न जाना चाहिए, पर जिसको पार करनेकी अभिलाषा करनेकी चेष्टा हम निश्चय ही कर सकते हैं।

१३. मराठा शक्ति के सम्बन्धमें मुनरोके विचार.

अन्तिम मराठा युद्ध आरम्भ होनेके पूर्व ही, सर टॉमस मुनरोने मराठोंके कुछ मुख्य दोषोंकी ओर स्पष्ट रूपसे संकेत किया था। १२ अगस्त, १८१७ को उसने गवर्नर जेनरलको इस प्रकार लिखा:

"जब मैं देशी राज्योंकी दुर्बलता और उनके ऊपर शासन करनेवाले सर्दारोंके चरित्रके ऊपर विचार करता हूं तो मुझे उनकी ओरसे दीर्घकालीन अवरोधकी आशा बहुत कम दिखाई पड़ती है। उनके पास इतनी शक्ति नहीं है कि हमारी सेनाओंको हटा सकें और हमा` राज्य पर लूटमार या हमला करके लड़ाईको ज्यादा

है, देशके इस भागमें सर्वत्र छितरे पड़े हैं। वे अभी तक अनेक विद्वानोंके धैर्यपूर्ण एवं स्वार्थरहित परिश्रमकी बाट जोह रहे हैं। इस समय हम जो कुछ कर रहे हैं उसका सम्बन्ध मुख्य रूपसे राजनीतिक चेष्टाओंसे है; सामाजिक और आर्थिक (चेष्टाएँ) तो अभी तक एक तरहसे अछूती ही पड़ी है। चारों ओर द्रुतगतिसे होनेवाली उन्नति के इस जमाने में भारतवर्ष अब अपने को शेष जगत्‌से और अधिक दिनों तक अलग नहीं रख सकता। सावधानीके साथ जांच करने पर हमको बहुत सी ऐसी बातें मालूम होंगी जो पहले ज्ञात न थीं। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्धमें, हमारी भेंट उत्तर-भारत के ऐसे तमाम व्यक्तियोंसे होती है, जिनकी हमारे स्वीकृत इतिहास में निन्दा की गई है। हमें अपने तर्क से इस निन्दा को सिद्ध करना चाहिए या उसका खंडन करना चाहिए। सम्राट् शाहआलम द्वितीय और उसके विभिन्न पदाधिकारी जैसे मिर्जा नजफखां, मीर जाफर, मीर क़ासिम, अलीवर्दीखां, मुहम्मद रजाखां, छोटा गाजिउद्दीन (जो कुछ समय तक दिल्लीका किंग मेकर था), रुहेला नजीबखां और उसका लड़का जाबताखां, शुजाउद्दौला और उसके उत्तराधिकारी, बनारसका राजा चेतसिंह और इनके अतिरिक्त विभिन्न राजपूत, और जाट तथा सिख नेतागण—ये सभी और ढेर के ढेर दूसरे लोग, जिनमें हिन्दू और मुसलमान सभी आ जाते हैं, भारतकी स्वतंत्रता की रक्षा करने में शक्तिहीनसे सिद्ध होते जान पड़ते हैं। यह कैसे कि सारा ज्ञान अकस्मात् इस देशसे पश्चिममें चला गया हुआ-सा जान पड़ता है। क्या हम इस बातकी शंका नहीं कर सकते कि उनकी जीवनवृत्तियोंकी परीक्षा हमारे अपने रिकार्डोंसे और भारतीय दृष्टिकोणसे नहीं की गई? यदि हम नई सामग्रियोंकी खोज करें तो इन पुरुषोंकी गलतियों और असफलताओं में से भी कमसे कम कुछ मुक्ति-दायक प्रसंग तो ढूंढ़ ही लेंगे। क्या सारे प्रमाणों पर गौर किये बिना ही हम उनका निर्णय कर लेंगे और उनकी निन्दा कर डालेंगे? छोटे-से-छोटे अपराधी तक को अपने बचाव के लिए मौका दिया जाता है। क्या कुछ दयावान् प्राणी उनके इस कर्तव्यको मिटानेके लिए न उठ खड़े होंगे? मैं कार्यकर्ताओंसे अपील करता हूं और साथ ही यह विश्वास करता हूं कि वे मेरी बात खाली न जाने देंगे।